UPBIL 04831

मूल्य ₹100

विशेषांक

संस्कृति, साहित्य, अध्यात्म और जीवन दर्शन की मासिक द्विभाषी पत्रिका

संस्कृति पर्व

sanskritiparva

जीवन उत्सव

विदेश के लिए मूल्य : $10

हरी प्रसाद गोपी कृष्ण सराफ प्रा. लि. वेन्चर

गोरखपुर: गोपी गली, हिन्दी बाज़ार । ऐश्प्रा क्रासिंग, पार्क रोड

TOLL FREE : 1800 120 1299 • देवरिया । पडरौना । बस्ती । बलिया । आजमगढ़ । लखनऊ । मुम्बई • AISSHPRA JEWELLERY

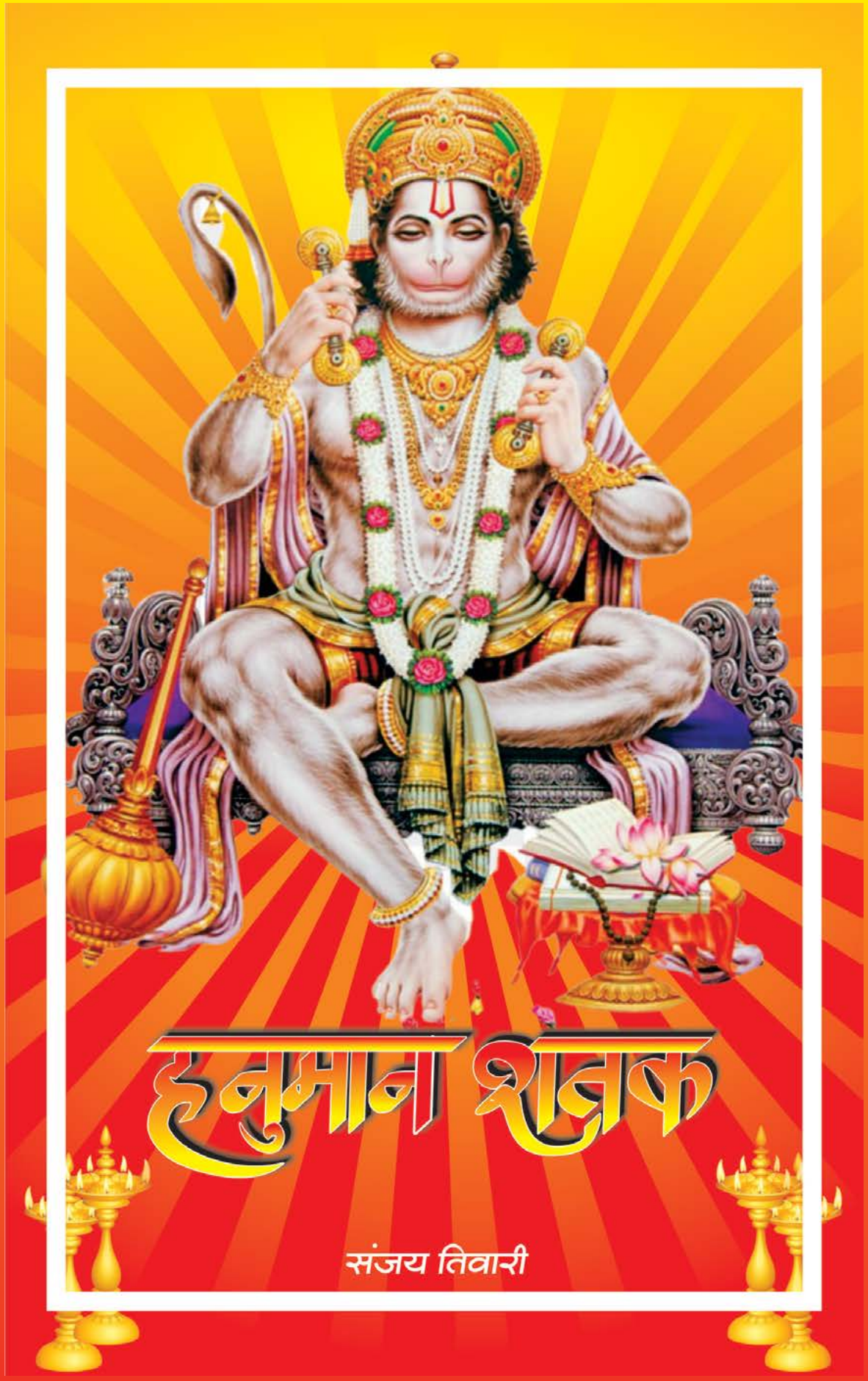
हनुमान शतक
संजय तिवारी

अनुक्रमणिका

क्रम संख्या	शीर्षक	लेखक	पृष्ठ सं0
01	मानव सृष्टि का आरम्भ	प्रो. राकेश कुमार उपाध्याय	14
02	ऋतूनां कुसुमाकरः	संजय तिवारी	18
03	महाप्राण निराला और ऋतुराज	डॉ. मुन्ना तिवारी	23
04	जीवन में रस का उत्सव	अनिता अग्रवाल	26
05	रंगों का त्योहार और परम्पराएं	भास्कर दूबे	28
06	संगीत में होली	डॉ. अर्चना तिवारी	44
07	वन्दे तां परमेश्वरीं भगवतीं बुद्धिप्रदां शारदाम्	आचार्य लालमणि तिवारी	48
08	सुवसन्तकः पुष्पधन्वा मदन महोत्सवः	डॉ. नीता चौबीसा	52
09	बसंत के शब्दशिल्पी महाप्राण निराला	डॉ. अरुण कुमार दवे	57
10	कवियों में संत हों, संतों में कवि हों	डॉ. अरुण प्रकाश	60
11	आधुनिक परिवेश में नई शब्द व्याख्या	पुस्तक समीक्षा	63
12	काव्यांगन	भारतेंदु हरिश्चंद्र सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी गोपाल दास नीरज कुँवर बेचैन रिवंशराय बच्चन राजेश राज दयानंद पांडेय डॉ. संध्या राठौर प्रज्ञा विनोदिनी आशा पाण्डेय ओझा	66

पाठकों से

संस्कृति पर्व का यह विशेष अंक आपके हाथों में है। इस अंक के लिये चित्रों का संकलन गूगल से किया गया है जिसके लिए हम उन सभी छायाकारों के प्रति कृतज्ञ हैं। इस अंक मे संभव है कि संपादन अथवा संयोजन में कुछ त्रुटियां रह गयी हों इसलिए हम अपने सुधी पाठकों से अपेक्षा करते हैं कि वे त्रुटियों को नजरअंदाज करेंगें। यह अंक आपको कैसा लगा इस बारे में हमें अपने विचारों से अवश्य अवगत कराईएगा। सनातन संस्कृति के संरक्षण और संवर्धन में आपका योगदान अत्यंत मूल्यवान है।

– सम्पादक

संस्कृति पर्व
sanskritiparva

जीवन उत्सव- अंक

वर्ष-5 अंक-9 जनवरी - 2023

सनातन प्रकाश पुंज

जगद्गुरू स्वामी वासुदेवाचार्य जी स्वामी विद्याभास्कर जी महाराज
स्वामी जीतेन्द्रानंद सरस्वती जी
(महामंत्री, अखिल भारतीय संत समिति एवं गंगा महासभा)
जगद्गुरु स्वामी राघवाचार्य जी (श्री अयोध्या जी)
स्वामी राजकुमार दासजी (श्री अयोध्या जी)

संरक्षक मंडल

श्री शिव प्रताप शुक्ल (सदस्य राज्यसभा)
श्री संजय राय शेरपुरिया (उद्यमी एवं लेखक)
श्री अतुल सराफ (संस्कृति एंव समाजसेवी)

विद्वत परिषद

प्रो0 सभाजीत मिश्र - (पूर्व अध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग, (गो0वि0वि0)
प्रो0 दयानाथ त्रिपाठी - (पूर्व अध्यक्ष, आईसीएचआर, नई दिल्ली)
आचार्य रजनीश शुक्ल - (कुलपति, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी वि0 वि0, वर्धा, महाराष्ट्र)
प्रो0 एम0 एम0 पाठक - (कुलपति, श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय,नई दिल्ली)
प्रो0 संजय द्विवेदी - (निदेशक, भारतीय जनसंचार संस्थान, नई दिल्ली)
डॉ0 लालता प्रसाद मिश्र - (वरिष्ठ अधिवक्ता, उच्च न्यायालय, लखनऊ)
ए. पी. मिश्र -(अधिवक्ता, उच्च न्यायालय, लखनऊ)
प्रो0 विनय कुमार पाण्डेय -(अध्यक्ष, ज्योतिष विभाग का0 हि0 वि0 वि0)
प्रो0 रामदेव शुक्ल - (पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, गो0वि0वि0)
प्रो0 माता प्रसाद त्रिपाठी - (पूर्व अध्यक्ष, प्राचीन इतिहास विभाग, गो0वि0वि0)
प्रो0 नन्द किशोर पाण्डेय - (पूर्व अध्यक्ष, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा)
प्रो0 सदानंद गुप्त - (कार्यकारी अध्यक्ष, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान)
श्री मनोजकांत - (सम्पादक राष्ट्रधर्म)
प्रो0 अजित के चतुर्वेदी - (निदेशक, आईआईटी रुड़की)
प्रो0 सुरेन्द्र दुबे - (पूर्व कुलपति, सिद्धार्थ वि0वि0)
श्री प्रफुल्ल केतकर - (सम्पादक, ऑर्गनाइजर)
डॉ मृणालिनी चतुर्वेदी - (अध्यक्ष क्रायोबैंक इंटरनेशनल, नई दिल्ली)
भास्कर दूबे - (वरिष्ठ पत्रकार, लखनऊ)
श्री कृष्णकांत उपाध्याय - (सम्पादक,जनता टीवी, उ0प्र0)
डॉ0 देवर्षि शर्मा - (लेखक एवं समाजसेवी, कानपुर)
डॉ0 प्रदीप राव - (शिक्षाविद्, गोरखपुर)
प्रो0 हिमांशु चतुर्वेदी - (इतिहास विभाग, गो0वि0वि0)
प्रो0 राजेन्द्र सिंह - (पूर्व प्रतिकुलपति, (गो0वि0वि0)
श्री आर एल पाण्डेय - (शिक्षाविद् टेक्सास, अमेरिका)
डॉ0 नरेश अग्रवाल - (वरिष्ठ बाल रोग विशेषज्ञ, गोरखपुर)
डॉ0 आर0 सी0 श्रीवास्तव - (अवकाशप्राप्त आई0ए0एस0)
राकेश त्रिपाठी - (आई0 आर0 एस0)
डॉ0 योगेश मिश्र - (समूह सम्पादक, अपना भारत/न्यूज ट्रैक, लखनऊ)

प्रेरणा

परम पूज्य स्वामी अखण्डानंद जी महाराज
संत साहित्य मर्मज्ञ आचार्य परशुराम चतुर्वेदी
ब्रह्मर्षि रेवती रमण पाण्डेय

सलाहकार परिषद

अध्यक्ष
श्रीमती रेशमा एच सिंह, (नई दिल्ली)

सदस्य
श्री कुणाल तिलक, (पुणे)
श्री अनीश गोखले, (बेंगलुरु)
श्री अंबरीष फडणवीस, (मुम्बई)
श्री अजय उपाध्याय (वरिष्ठ पत्रकार, नई दिल्ली)
श्री सुजीत कुमार पाण्डेय (वरिष्ठ पत्रकार, गोरखपुर)
प्रो0 मुन्ना तिवारी (बुन्देलखण्ड वि0वि0 झांसी)
दयानंद पाण्डेय (लेखक एवं पत्रकार)
प्रो0 पुनीत विसारिया अध्यक्ष हिन्दी विभाग, बुंदेलखण्ड वि0 वि0, झांसी
आचार्य सोमदत्त द्विवेदी (वाराणसी)
डॉ0 ममता त्रिपाठी (दिल्ली वि0वि0)
श्री सुनील जैन(एडवोकेट, इलाहाबाद)
डॉ0 मिथिलेश तिवारी (संगीतज्ञ, गोरखपुर)
श्री हेमंत मिश्र (निदेशक, एबीसी शिक्षा समूह)
श्री अजय शाही (निदेशक, आरपीएम शिक्षा समूह)
डॉ0 गजेन्द्रनाथ मिश्र (निदेशक, आर0सी0 मेमोरियल शिक्षा समूह)
श्री अरुणकांत त्रिपाठी (सम्पादक, कमलज्योति, लखनऊ)
डॉ0 मनोज कुमार श्रीवास्तव (चिकित्सक एवं लेखक, वाराणसी)
डॉ0 वाई के मद्धेशिया (वरिष्ठ चिकित्सक, कुशीनगर)
श्री मंकेश्वरनाथ पाण्डेय (सचिव, नेशनल एजुकेशनल सोसाईटी, गोरखपुर)
श्री दीप्तभानु डे (वरिष्ठ पत्रकार, गोरखपुर)
श्री रतिभान त्रिपाठी (वरिष्ठ पत्रकार, लखनऊ)
श्री पुरुषोत्तम तिवारी (वरिष्ठ पत्रकार, कोलकाता)
डॉ0 रविकांत तिवारी(अमेरिका)
डॉ0 राम शर्मा(शिक्षाविद्, मेरठ)
दिवाकर शर्मा(वरिष्ठ पत्रकार, शिवपुरी)
आमोदकांत मिश्र (वरिष्ठ पत्रकार, कुशीनगर)

प्रधान सम्पादक
श्री हनुमानजी महाराज

सम्पादकीय संरक्षक
आचार्य विश्वनाथ प्रसाद तिवारी
(पूर्व अध्यक्ष, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली)

समूह सम्पादक
प्रो0 राकेश कुमार उपाध्याय

प्रबंध सम्पादक
बी के मिश्र

सम्पादक
संजय तिवारी

कार्यकारी सम्पादक
डॉ0 अर्चना तिवारी

सहायक सम्पादक
डॉ0 अनिता अग्रवाल
प्रज्ञा मिश्रा

समन्वय सम्पादक
विक्रमादित्य सिंह

सम्पादकीय सलाहकार
डॉ0 हितेश व्यास
मनोज कुमार त्रिपाठी
माधवी व्यास

सह सम्पादक
गोविन्द शर्मा
कमलेश कमल

विशेष सम्पादकीय परामर्श
आचार्य लालमणि तिवारी
(गीता प्रेस, गोरखपुर)
श्री रसेन्दु फोगला
(गीता वाटिका, गोरखपुर)
श्री अजीत दुबे
(सदस्य साहित्य अकादमी, नई दिल्ली)

केन्द्र प्रभारी, अमेरिका
आचार्य रत्नदीप उपाध्याय

विधि सलाहकार
श्री अमिताभ चतुर्वेदी
(वरिष्ठ अधिवक्ता, नई दिल्ली)
कैप्टन सुभाष ओझा
(वरिष्ठ अधिवक्ता, लखनऊ)

लेखा परीक्षक
अरुण गुप्ता

लेआउट, ग्राफिक्स एवं डिजाइन
संजय मानव

सूचना तकनीक एवं प्रबंधन
उत्कर्ष तिवारी

क्रिएटिव
प्रकर्ष तिवारी
(shot by inflict)

स्वामी, मुद्रक एवं प्रकाशक संजय तिवारी द्वारा स्वास्तिक ग्रफिक्स, महागनगर, लखनऊ उ0प्र0 से मुद्रित एंव बी–64, आवास विकास कॉलोनी, सूरजकुण्ड, गोरखपुर, उ0प्र0 से प्रकाशित

पत्रिका में प्रकाशित सामग्री के लिए संबंधित लेखक उत्तरदायी होगा। किसी भी प्रकार के न्यायिक विवाद का क्षेत्र गोरखपुर जिला न्यायालय के अधीन होगा।

पंजीकृत कार्यालय : बी-64, आवास विकास कालोनी, सूरजकुंड, गोरखपुर-273001
लखनऊ कार्यालय : 2/43, विजय खण्ड, गोमती नगर, लखनऊ-226010
दिल्ली कार्यालय : बी-38 डिफेन्स कॉलोनी, नई दिल्ली-110024
सम्पर्क - : + 9194508 87186-87
USA Office : 17413 Blackhawk St. Granada Hills, CA 91344 USA
Cell : 1-818-815-9826

(भारत संस्कृति न्यास का प्रकल्प)
Mail us: editor.sanskritiparva@gmail.com
Website: www.bharatsanskritinyas.org
Follow us

आशीर्वाद

यह अत्यंत हर्ष का विषय है कि मासिक पत्रिका संस्कृति पर्व ने गत वर्ष की भांति इस वर्ष भी वसंत ऋतु को केन्द्रित कर जीवन का महाउत्सव विशेष अंक प्रकाशित करने की योजना बनाई है।

इस अंक के केन्द्र में सृष्टि और प्रकृति के बीच जीवन के उत्सव के उस स्वरूप को प्रस्तुत करने का प्रयास है जो विद्या की अधिष्ठात्री मां सरस्वती के ज्ञान और ऊर्जामयी स्वरूप को स्थापित भी करता है। ज्ञान और विद्या की अधिष्ठात्री मां सरस्वती भारतीय सनातन वैदिक संस्कृति में अतिशय महत्व रखती हैं। मां सरस्वती की कृपा और आशीर्वाद से ही सनातन ज्ञान गंगा निरंतर प्रवाहित हो रही हैं।

सृष्टि और प्रकृति के लिए भी वसंत महाउत्सव है। श्रीमद भगवदगीता में भगवान श्रीकृष्ण स्वयं कहते हैं- मैं ऋतुओं में बसंत ऋतु हूँ। ऐसे पवित्र ऋतु का एक महात्म्य होलिका दहन और रंगोत्ससव भी है। इतने महत्व के विषय पर संस्कृति पर्व का अंक प्रकाशित होना एक सुखद अनुभूति है। इस विशेष अंक के लिए संस्कृति पर्व के संपादक संजय तिवारी और उनकी संपादकीय परिषद को अनंत आशीर्वाद।

राघवाचार्य

जगद्गुरु स्वामी राघवाचार्य जी

प्रेरणा

सत्सङ्ग

कोई उद्वेग का प्रसंग आ जाय तो घबराना मत, धैर्य रखना। हमारे जीवन में जो उद्वेग के, घबराने के प्रसंग आते हैं, उनमें से 99 प्रतिशत तो अपने-आप ही शांत हो जाते हैं। अंधकार देखकर घबराना नहीं चाहिए। प्रतिकूल परिस्थिति में यह नहीं समझना चाहिए कि 'यह अब हमेशा के लिए आ गयी क्योंकि जो आता है सो जाता है। यह नियम है 'यह भी नहीं रहेगा'। अच्छे दिन आते हैं, ये नहीं रहेंगे। बुरे दिन आते हैं, ये नहीं रहेंगे। अच्छे दिन आयें तो फूल मत जाओ, यह भी धैर्य की कमी है । बुरे दिन आयें तो घबरा मत जाओ।

हमने एक महीने की पैदल यात्रा प्रारम्भ की। दो-तीन मील चलते-चलते मूसलाधार वर्षा होने लगी। चारों ओर पानी भर गया। बोले, 'अरे, पहले दिन ही ऐसा हुआ!' लेकिन फिर भी धैर्य बना रहा। एक दीपक दिखता था बड़ी दूर, उसकी सीध में चले गये। छप्पर मिल गया, सूखी जमीन मिल गयी। रात को पीने को दूध मिल गया। सो गये। दूसरे दिन सवेरे उठे और फिर क्रमशः 29 दिनों की यात्रा की। कहीं कोई विघ्न आया ही नहीं। अतः विघ्न-बाधाओं में धैर्य नहीं खोना चाहिए।

स्वामी अखण्डानंद सरस्वती

लोक कल्याण सेतु, मई 2018

सरस्वती वंदना

या कुन्देन्दुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता।
या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना॥
या ब्रह्माच्युत शंकरप्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता।
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा॥

जो विद्या की देवी भगवती सरस्वती कुन्द के फूल, चंद्रमा, हिमराशि और मोती के हार की तरह धवल वर्ण की हैं और जो श्वेत वस्त्र धारण करती हैं, जिनके हाथ में वीणा-दण्ड शोभायमान है, जिन्होंने श्वेत कमलों पर आसन ग्रहण किया है तथा ब्रह्मा, विष्णु एवं शंकर आदि देवताओं द्वारा जो सदा पूजित हैं, वही संपूर्ण जड़ता और अज्ञान को दूर कर देने वाली मां सरस्वती हमारी रक्षा करें।

शुक्लां ब्रह्मविचार सार परमाम् आद्यां जगद्व्यापिनीम्।
वीणा-पुस्तक-धारिणीमभयदां जाड्यान्धकारापहाम्॥
हस्ते स्फटिकमालिकां विदधतीम् पद्मासने संस्थिताम्।
वन्दे तां परमेश्वरीं भगवतीं बुद्धिप्रदां शारदाम्॥

जिनका रूप श्वेत है, जो ब्रह्मविचार की परम तत्व हैं, जो सब संसार में फैले रही हैं, जो हाथों में वीणा और पुस्तक धारण किये रहती हैं, अभय देती हैं, मूर्खतारूपी अन्धकार को दूर करती हैं, हाथ में स्फटिकमणि की माला लिए रहती हैं, कमल के आसन पर विराजमान होती हैं और बुद्धि देनेवाली हैं, उन आद्या परमेश्वरी भगवती सरस्वती की मैं वन्दना करता हूँ ।

यह अत्यंत हर्ष का विषय है कि मासिक पत्रिका संस्कृति पर्व ने वर्ष 2023 का प्रथम अंक जीवन का महाउत्सव पर केंद्रित किया है। ज्ञान और विद्या की अधिष्ठात्री मां सरस्वती भारतीय सनातन वैदिक संस्कृति में अतिशय महत्व रखती हैं। मां सरस्वती की कृपा और आशीर्वाद से ही सनातन ज्ञान गंगा निरंतर प्रवाहित हो रही हैं। सृष्टि और प्रकृति के लिए भी वसंत महाउत्सव है। श्रीमद भगवदगीता में भगवान श्रीकृष्ण स्वयं कहते हैं- मैं ऋतुओं में बसंत ऋतु हूँ।

ऐसे पवित्र ऋतु का एक महात्म्य होलिका दहन और रंगोत्ससव भी है। इतने महत्व के विषय पर संस्कृति पर्व का अंक प्रकाशित होना एक सुखद अनुभूति है। यह अंक निश्चय ही अत्यंत महत्व का तो है ही, श्रमसाध्य भी है। बसंत पंचमी से होली तक की जीवनयात्रा अद्भुत है। मुझे विश्वास है कि यह अंक हमारे सुधी पाठकों को बहुत प्रिय लगेगा। इस विशेष अंक के लिए संस्कृति पर्व की संपादकीय परिषद निश्चित रूप से बधाई की पात्र है। यह विशेष अंक भारतीय संस्कृति की पुनर्स्थापना और प्रसार की दृष्टि से भी बहुत महत्वपूर्ण है। मैं इस विशेष अंक की सफलता की हृदय से कामना करता हूँ।

माता सरस्वती के 108 नाम व मंत्रः

1. सरस्वती ॐ सरस्वत्यै नमः।
2. महाभद्रा ॐ महाभद्रायै नमः।
3. महामाया ॐ महमायायै नमः।
4. वरप्रदा ॐ वरप्रदायै नमः।
5. श्रीप्रदा ॐ श्रीप्रदायै नमः।
6. पद्मनिलया ॐ पद्मनिलयायै नमः।
7. पद्माक्षी ॐ पद्मा क्षैय नमः।
8. पद्मवक्त्रगा ॐ पद्मवक्त्रायै नमः।
9. शिवानुजा ॐ शिवानुजायै नमः।
10. पुस्तकधृत ॐ पुस्त कध्रते नमः।
11. ज्ञानमुद्रा ॐ ज्ञानमुद्रायै नमः।
12. रमा ॐ रमायै नमः।
13. परा ॐ परायै नमः।
14. कामरूपा ॐ कामरूपायै नमः।
15. महाविद्या ॐ महाविद्यायै नमः।
16.महापातक नाशिनी ॐ महापातक नाशिन्यै नमः।
17. महाश्रया ॐ महाश्रयायै नमः।
18. मालिनी ॐ मालिन्यै नमः।
19. महाभोगा ॐ महाभोगायै नमः।
20. महाभुजा ॐ महाभुजायै नमः।
21. महाभागा ॐ महाभागायै नमः।
22. महोत्साहा ॐ महोत्साहायै नमः।
23. दिव्याङ्गा ॐ दिव्याङ्गायै नमः।
24. सुरवन्दिता ॐ सुरवन्दितायै नमः।
25. महाकाली ॐ महाकाल्यै नमः।
26. महापाशा ॐ महापाशायै नमः।
27. महाकारा ॐ महाकारायै नमः।
28. महाङ्कुशा ॐ महाङ्कुशायै नमः।
29. सीता ॐ सीतायै नमः।
30. विमला ॐ विमलायै नमः।
31. विश्वा ॐ विश्वायै नमः।
32. विद्युन्माला ॐ विद्युन्मालायै नमः।
33. वैष्णवी ॐ वैष्णव्यै नमः।
34. चन्द्रिका ॐ चन्द्रिकायै नमः।
35. चन्द्रवदना ॐ चन्द्रवदनायै नमः।
36.चन्द्रलेखाविभूषिता ॐ चन्द्रलेखाविभूषितायै नमः।
37 सावित्री ॐ सावित्र्यै नमः।
38. सुरसा ॐ सुरसायै नमः।
39. देवी ॐ देव्यै नमः।
40. दिव्यालङ्कारभूषिता ॐ दिव्यालङ्कारभूषितायै नमः।
41. वाग्देवी ॐ वाग्देव्यै नमः।
42. वसुधा ॐ वसुधायै नमः।
43. तीव्रा ॐ तीव्रायै नमः।
44. महाभद्रा ॐ महाभद्रायै नमः।
45. महाबला ॐ महाबलायै नमः।
46. भोगदा ॐ भोगदायै नमः।
47. भारती ॐ भारत्यै नमः।
48. भामा ॐ भामायै नमः।
49. गोविन्दा ॐ गोविन्दायै नमः।
50. गोमती ॐ गोमत्यै नमः।
51. शिवा ॐ शिवायै नमः।
52. जटिला ॐ जटिलायै नमः।
53. विन्ध्यवासा ॐ विन्ध्यावासायै नमः।
54.विन्ध्याचलविराजिता ॐ विन्ध्याचलविराजितायै नमः।
55. चण्डिका ॐ चण्डिकायै नमः।
56. वैष्णवी ॐ वैष्णव्यै नमः।
57. ब्राह्मी ॐ ब्राह्मयै नमः।
58. ब्रह्मज्ञानैकसाधना ॐ ब्रह्मज्ञानैकसाधनायै नमः।
59. सौदामिनी ॐ सौदामिन्यै नमः।
60. सुधामूर्ति ॐ सुधामूर्त्यै नमः।
61. सुभद्रा ॐ सुभद्रायै नमः।
62. सुरपूजिता ॐ सुरपूजितायै नमः।
63. सुवासिनी ॐ सुवासिन्यै नमः।
64. सुनासा ॐ सुनासायै नमः।
65. विनिद्रा ॐ विनिद्रायै नमः।
66. पद्मलोचना ॐ पद्मलोचनायै नमः।
67. विद्यारूपा ॐ विद्यारूपायै नमः।
68. विशालाक्षी ॐ विशालाक्ष्यै नमः।
69. ब्रह्मजाया ॐ ब्रह्मजायायै नमः।
70. महाफला ॐ महाफलायै नमः।
71. त्रयीमूर्ती ॐ त्रयीमूर्त्यै नमः।
72. त्रिकालज्ञा ॐ त्रिकालज्ञायै नमः।
73. त्रिगुणा ॐ त्रिगुणायै नमः।
74. शास्त्ररूपिणी ॐ शास्त्ररूपिण्यै नमः।
75. शुम्भासुरप्रमथिनी ॐ शुम्भासुरप्रमथिन्यै नमः।
76. शुभदा ॐ शुभदायै नमः।
77. सर्वात्मिका ॐ स्वरात्मिकायै नमः।
78. रक्तबीजनिहन्त्री ॐ रक्तबीजनिहन्त्र्यै नमः।
79. चामुण्डा ॐ चामुण्डायै नमः।
80. अम्बिका ॐ अम्बिकायै नमः।
81. मुण्डकायप्रहरणा ॐ मुण्डकायप्रहरणायै नमः।
82. धूम्रलोचनमर्दना ॐ धूम्रलोचनमर्दनायै नमः।
83. सर्वदेवस्तुता ॐ सर्वदेवस्तुतायै नमः।
84. सौम्या ॐ सौम्यायै नमः।
85. सुरासुर नमस्कृता ॐ सुरासुर नमस्कृतायै नमः।
86. कालरात्री ॐ कालरात्र्यै नमः।
87. कलाधारा ॐ कलाधारायै नमः।
88. रूपसौभाग्यदायिनी ॐ रूपसौभाग्यदायिन्यै नमः।
89. वाग्देवी ॐ वाग्देव्यै नमः।
90. वरारोहा ॐ वरारोहायै नमः।
91. वाराही ॐ वाराहयै नमः।
92. वारिजासना ॐ वारिजासनायै नमः।
93. चित्राम्बरा ॐ चित्राम्बरायै नमः।
94. चित्रगन्धा ॐ चित्रगन्धायै नमः।
95. चित्रमाल्यविभूषिता ॐ चित्रमाल्यविभूषितायै नमः।
96. कान्ता ॐ कान्तायै नमः।
97. कामप्रदा ॐ कामप्रदायै नमः।
98. वन्द्या ॐ वन्द्यायै नमः।
99. विद्याधरसुपूजिता ॐ विद्याधरसुपूजितायै नमः।
100. श्वेतासना ॐ श्वेतासनायै नमः।
101. नीलभुजा ॐ नीलभुजायै नमः।
102. चतुर्वर्गफलप्रदा ॐ चतुर्वर्गफलप्रदायै नमः।
103. चतुरानन साम्राज्या ॐ चतुरानन साम्राज्यायै नमः।
104. रक्तमध्या ॐ रक्तमध्यायै नमः।
105. निरञ्जना ॐ निरञ्जनायै नमः।
106. हंसासना ॐ हंसासनायै नमः।
107. नीलजङ्घा ॐ नीलजङ्घायै नमः।
108. ब्रह्मविष्णुशिवात्मिका ॐ ब्रह्मविष्णुशिवान्मिकायै नमः।

सम्पादकीय

बुद्धि, मेधा, प्रज्ञा की अधिष्ठात्री और परमचेतना मां सरस्वती

संजय तिवारी

“ बसंत पंचमी, ज्ञान, संगीत और कला की देवी, 'सरस्वती' की पूजा का त्योहार है। इस त्योहार में बच्चों को उनका पहला शब्द लिखना सिखाया जाता है।बसंत पंचमी के दिन विद्या की देवी सरस्वती की पूजा की जाती है। इस दिन पीले वस्त्र धारण करने का प्रचलन है। बसंत पंचमी सर्दियों के मौसम के अंत का प्रतीक है। हर कोई बहुत मज़े और उत्साह के साथ इस त्यौहार का आनंद लेता है। ”

यह सृष्टि बहुत सुंदर है। प्रकृति बहुत सुंदर है। जीवन बहुत सुंदर है। यह धरती बहुत सुंदर है। आकाश अतिशय सुंदर है। स्वर, शब्द, निनाद और कुसुमित किसलय कल्लोल की अनुभूति बहुत ही सुंदर है। यह सौंदर्य ही है जिसने भगवान श्रीकृष्ण से यह कहलवा दिया कि मै ऋतुओं में बसंत हूँ। परमब्रह्म की परम चेतना की परमशक्ति इन्ही मां वीणापाणि में निहित है।

माता सरस्वती को वागीश्वरी, भगवती, शारदा, वीणावादनी और वाग्देवी सहित अनेक नामों से पूजा जाता है। ये विद्या और बुद्धि प्रदाता हैं। संगीत की उत्पत्ति करने के कारण ये संगीत की देवी भी हैं। बसन्त पंचमी के दिन को इनके प्रकटोत्सव के रूप में भी मनाते हैं। ऋग्वेद में भगवती सरस्वती का वर्णन करते हुए कहा गया है-

प्रणो देवी सरस्वती वाजेभिर्वजिनीवती धीनामणित्रयवतु

अर्थात ये परम चेतना हैं। सरस्वती के रूप में ये हमारी बुद्धि, प्रज्ञा तथा मनोवृत्तियों की संरक्षिका हैं। हममें जो आचार और मेधा है उसका आधार भगवती सरस्वती ही हैं। इनकी समृद्धि और स्वरूप का वैभव अद्भुत है। इसको थोड़ी गहन दृष्टि दीजिये। सनातन वैदिक आर्य हिन्दू से संस्कृति के स्वरूप को निहारिये। कितना सौंदर्य है। कितना बड़ा विज्ञान है। कितना शुद्ध जीवन दर्शन है। लौकिक भी और पारलौकिक भी। सावन में शिव आराधना। अश्विन में शक्ति साधना। कार्तिक में लक्ष्मी की पूजा और माघ की पंचमी से बसंत से शुरू फागुन के बाद की प्रतिपदा के रंगपर्व से पूर्ण। जीवन के सभी तत्व। रंग, रूप , गंध के साथ शक्ति और लक्ष्मी युक्त जीवन। यही तो जीवन का सार है। इसलिए इसे वसन्तोत्सव और मदनोत्सव भी कहा गया। असीम साहित्य सृजित हुए। संगीत के अनेक सुमधुर राग बने और बिखरे। पलाश की रक्तिम लालिमा से लेकर सरसों के पीले अम्बर तक की प्रच्छन्न उपस्थिति में जीवन जीने की संस्कारयुक्त कला सिखाने वाले वंसत ऋतु की इस महत्ता को प्रत्येक भारतीय को जानना ही चाहिए।

माना जाता है कि विद्या, बुद्धि व ज्ञान की देवी सरस्वती का आविर्भाव इसी दिन हुआ था। इसलिए यह तिथि वागीश्वरी जयंती व श्री पंचमी के नाम से भी प्रसिद्ध है। ऋग्वेद के 10/125 सूक्त में सरस्वती देवी के असीम प्रभाव व महिमा का वर्णन किया गया है। पौराणिक ग्रंथों में भी इस दिन को बहुत ही शुभ माना गया है व हर नए काम की शुरुआत के लिए यह बहुत ही मंगलकारी माना जाता है। बसंत पंचमी, ज्ञान, संगीत और कला की देवी, 'सरस्वती' की पूजा का त्योहार है। इस त्योहार में बच्चों को उनका पहला शब्द लिखना सिखाया जाता है।बसंत पंचमी के दिन विद्या की देवी सरस्वती की पूजा की जाती है। इस दिन पीले वस्त्र धारण करने का प्रचलन है। बसंत पंचमी सर्दियों के मौसम के अंत का प्रतीक है। हर कोई बहुत मज़े और उत्साह के साथ इस त्यौहार का आनंद लेता है। पूरे साल को जिन छह मौसमों में बाँटा जाता है उनमें वसंत लोगों का सबसे मनचाहा मौसम है। जब फूलों पर बहार आ जाती,

खेतों में सरसों का फूल मानो सोना चमकने लगता, जौ और गेहूँ की बालियाँ खिलने लगतीं, आमों के पेड़ों पर मांजर (बौर) आ जाता और हर तरफ रंग-बिरंगी तितलियाँ मँडराने लगतीं हैं। भर-भर भंवरे भंवराने लगते हैं। वसंत ऋतु आते ही प्रकृति का कण-कण खिल उठता है। मानव तो क्या पशु-पक्षी तक उल्लास से भर जाते हैं। हर दिन नयी उमंग से सूर्योदय होता है और नयी चेतना प्रदान कर अगले दिन फिर आने का आश्वासन देकर चला जाता है। प्राचीनकाल से इसे ज्ञान और कला की देवी मां सरस्वती का जन्मदिवस माना जाता है। जो शिक्षाविद भारत और भारतीयता से प्रेम करते हैं, वे इस दिन मां शारदे की पूजा कर उनसे और अधिक ज्ञानवान होने की प्रार्थना करते हैं। कलाकारों का तो कहना ही क्या। जो महत्व सैनिकों के लिए अपने शस्त्रों और विजयादशमी का है, जो विद्वानों के लिए अपनी पुस्तकों और व्यास पूर्णिमा का है, जो व्यापारियों के लिए अपने तराजू, बाट, बहीखातों और दीपावली का है, वही महत्व कलाकारों के लिए वसंत पंचमी का है। चाहे वे कवि हों या लेखक, गायक हों या वादक, नाटककार हों या नृत्यकार, सब दिन का प्रारम्भ अपने उपकरणों की पूजा और मां सरस्वती की वंदना से करते हैं। वसन्त पञ्चमी के समय सरसो के पीले-पीले फूलों से आच्छादित धरती की छटा देखते ही बनती है।

इसके साथ ही यह पर्व हमें अतीत की अनेक प्रेरक घटनाओं की भी याद दिलाता है। सर्वप्रथम तो यह हमें त्रेता युग से जोड़ती है। रावण द्वारा सीता के हरण के बाद श्रीराम उसकी खोज में दक्षिण की ओर बढ़े। इसमें जिन स्थानों पर वे गये, उनमें दण्डकारण्य भी था। यहीं शबरी नामक भीलनी रहती थी। जब राम उसकी कुटिया में पधारे, तो वह सुध-बुध खो बैठी और चख-चखकर मीठे बेर राम जी को खिलाने लगी। प्रेम में पगे जूठे बेरों वाली इस घटना को रामकथा के सभी गायकों ने अपने-अपने ढंग से प्रस्तुत किया। दंडकारण्य का वह क्षेत्र इन दिनों गुजरात और मध्य प्रदेश में फैला है। गुजरात के डांग जिले में वह स्थान है जहां शबरी मां का आश्रम था। वसंत पंचमी के दिन ही रामचंद्र जी वहां आये थे। उस क्षेत्र के वनवासी आज भी एक शिला को पूजते हैं, जिसके बारे में उनकी श्रध्दा है कि श्रीराम आकर यहीं बैठे थे। वहां शबरी माता का मंदिर भी है।

ऋतुराज की इसी महत्ता को नई पीढ़ी तक पहुचाने के प्रयास की कड़ी में संस्कृति पर्व के इस विशेष अंक का आयोजन किया जा रहा है। यद्यपि इस अंक को पूर्ण बनाने का हर संभव प्रयास किया गया है किंतु समयाभाव के कारण इसको सम्पूर्ण नही माना जा सकता। संभव है कुछ त्रुटियां भी रह गयी हों। इसके लिए अपने सुधी पाठकों से क्षमा मांगते हुए सभी के सुझाव भी आमंत्रित कर रहा हूँ ताकि भविष्य के अंकों में इन कमियों को पूरा किया जा सके। ऋतुराज और रंगोत्सव पर आधारित यह प्रयास आपके हाथों में है। अपनी प्रतिक्रिया और सुझाव अवश्य दीजिएगा। प्रतीक्षा रहेगी।

सादर

“वसंत ऋतु आते ही प्रकृति का कण-कण खिल उठता है। मानव तो क्या पशु-पक्षी तक उल्लास से भर जाते हैं। हर दिन नयी उमंग से सूर्योदय होता है और नयी चेतना प्रदान कर अगले दिन फिर आने का आश्वासन देकर चला जाता है। प्राचीनकाल से इसे ज्ञान और कला की देवी मां सरस्वती का जन्मदिवस माना जाता है। जो शिक्षाविद भारत और भारतीयता से प्रेम करते हैं, वे इस दिन मां शारदे की पूजा कर उनसे और अधिक ज्ञानवान होने की प्रार्थना करते हैं।”

मानव सृष्टि का आरम्भ

प्रो. राकेश कुमार उपाध्याय

आकाश से पाताल तक समस्त देवों की आंखें चकाचौंध थीं, सृजन का वह पहला चित्र देवों की आंखों में सदा के लिए अंकित हो गया। जिस क्षण वह सुनहरा चित्र प्रकट हुआ तो ऋषियों ने उसे ही चैत्र मास के शुक्ल पक्ष में चित्रा नक्षत्र की उपस्थिति में सदा के लिए धन्य माना था। निराकार अवस्था में जो विवाह कभी शिव-पार्वती का जन्म-जन्मांतर से होता आया था, उसका यह जो पहला साक्षात प्रयोग अंतरिक्ष में गगन मंडल के आंगन में चल रहा था, उसे देख हर कोई मन ही मन मगन था, वह अदभुत सिंदूर दान शिव के प्रथम पुत्र गणपति की अगुवाई में निर्विघ्न मंगलगान के साथ सफल हो चुका था।

सप्त ऋषियों ने लगन पत्रिका सुनाकर जैसे ही बताया कि संसार को निराकार से साकार प्रकट करने वाली वह महान नवरात्रि आने ही वाली है, सारे देवता खुशी से झूम उठे और फाल्गुन मनाने लगे। चारों ओर रंग बरसने लगा और उस रासलीला जैसे नृत्य में समस्त ब्रह्मांड डूबने लगा था। शिव और शक्ति की जो निराकार से आगे कुछ नए विस्तार की इच्छा थी, उसे साक्षात दृश्य रूप के कर्म में बदलने में देव अपनी शक्तियों के साथ अरबों वर्ष से जुटे थे। सृष्टि के सृजन का जो कार्य अब तक अप्रकट, अनभिव्यक्त था, जो क्रिया निराकार में हो रही थी, अब वही क्रिया प्रकट होने जा रही थी, अव्यक्त व्यक्त होने को उतावला था। मिलन की वह महान मंगलबेला आखिरकार आ ही गई।

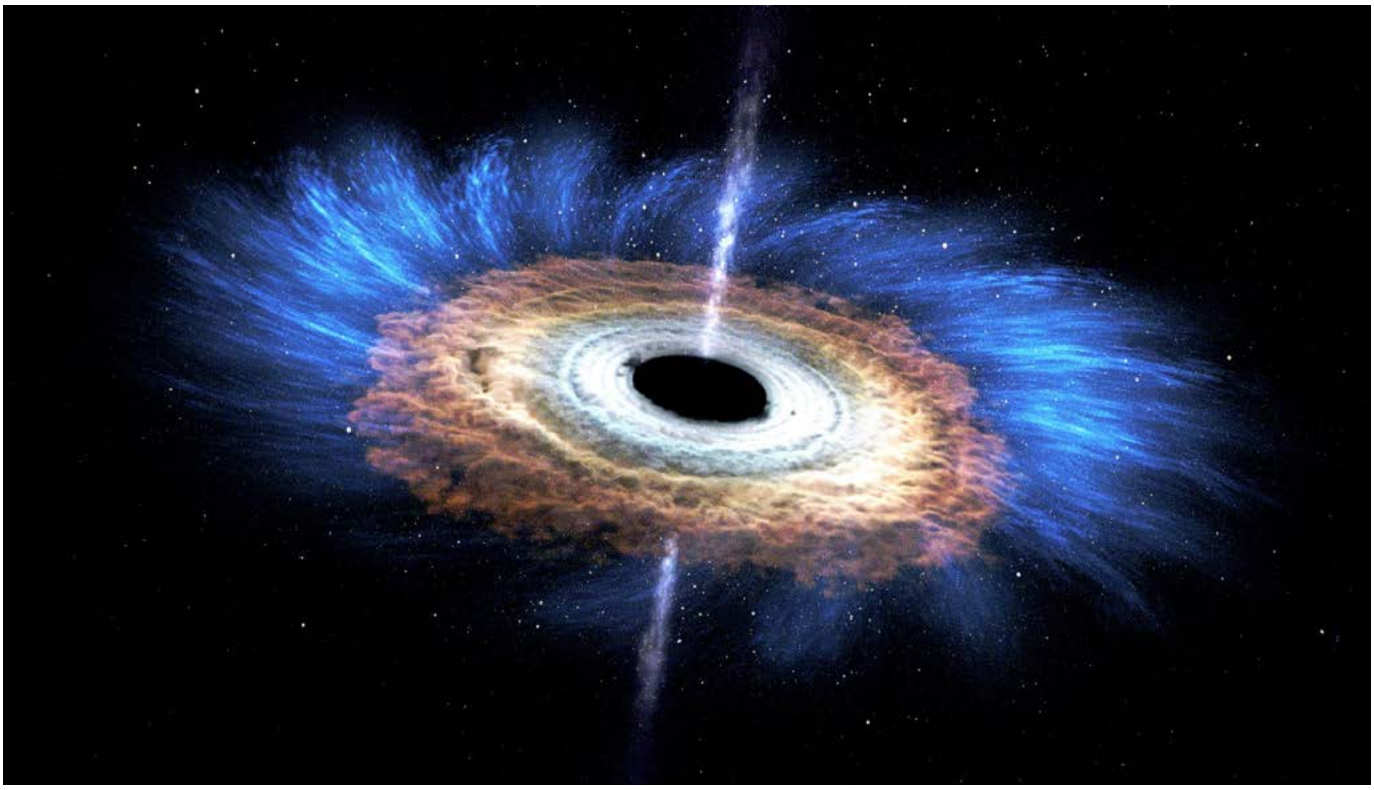

अब बारी ब्रह्मांड के प्रकट होने की थी। संसार का सृजन होने को ही था। करोड़ों अरबों वर्षों की प्रतीक्षा के बाद शरद के महासागर के गर्भ में ठंडी काली कराली कालरात्रि में प्रकट हुई उस सूक्ष्म शक्ति के ऊपर पसरी पूस की परत छंटने लगी थी। पृथ्वी आकार ले चुकी थी और सद्यःस्नात होकर महासागर के घुंघट से बाहर झांकने को तैयार थी। सृजन का वह साक्षात अमृत समय देखने समस्त देवगण तब उस महासागर के जल के आस-पास एक जुट हो गए थे कि मानो माघ महीने में जैसे संगम किनारे सारा जगत उस महानतम अमर तत्व लीला का दर्शन करने सिमट आता है।

शिव और पार्वती स्वयं नारायण के हाथों में इच्छा रूपी लाडली वसुन्धरा का हाथ रखकर कन्यादान कर चुके थे। अबतक चतुर्दिक अंधकार में जो जगत निराकार समाया था, उस संसार को मूर्तिमंत प्रकट करने का संकल्प नारायण ने सूर्यनारायण बनकर और लक्ष्मी ने सौभाग्यवती वसुधा-लक्ष्मी बनकर साकार कर दिखाया था। ब्रह्मांड का कण-कण तब नृत्य में मगन हो उठा था। देवों की पत्नियां मंगलाचार गाने लगी थीं, और ऋषियों के मुख से वेदमंत्र फूट रहे थे।

तभी देवों समेत समस्त विश्व ने एक विचित्र दृश्य देखा। महासागर से उठती अनन्त सौंदर्यवती पृथ्वी के गहरे काले भाल पर उस पहली प्रातबेला में जीवन प्रकट करने वाली वह एक महान सिन्दूरी रेखा तब भगवान सूर्यनारायण ने खींच दी थी। सागर के घुंघट से झांकता उस स्नानवती देवी का मुखमंडल अपने नारायण के हाथों सुहागन होकर इतना प्रदीप्त हो उठा कि सारा ब्रह्मांड ही लहालोट हो गया।

आकाश से पाताल तक समस्त देवों की आंखें चकाचौंध थीं, सृजन का वह पहला चित्र देवों की आंखों में सदा के लिए अंकित हो गया। जिस क्षण वह सुनहरा चित्र प्रकट हुआ तो ऋषियों ने उसे ही चैत्र मास के शुक्ल पक्ष में चित्रा नक्षत्र की उपस्थिति में सदा के लिए धन्य माना था। निराकार अवस्था में जो विवाह कभी शिव-पार्वती का जन्म-जन्मांतर से होता आया था, उसका यह जो पहला साक्षात प्रयोग अंतरिक्ष में गगन मंडल के आंगन में चल रहा था, उसे देख हर कोई मन ही मन मगन था, वह अदभुत सिंदूर दान शिव के प्रथम पुत्र गणपति की अगुवाई में निर्विघ्न मंगलगान के साथ सफल हो चुका था।

शिव के दूसरे पुत्र चंद्रमा से तब नहीं रहा गया। गणपति ने जिसे निर्विघ्न कर दिखाया, उसमें उनकी भागीदारी भला क्यों पीछे रहती। अपनी बहन वसुंधरा के पास दौड़े चले आए। शिव ने वचन लिया कि जब तक बहन भूमि रूप

में रहेगी तब तक तुम सूर्य के साथ रहने वाले सारे ग्रहों से इसकी रक्षा का कारण बनकर इसके चारों ओर परिक्रमा करते रहना। सूर्यनारायण ने भी मंदस्मित मुस्कान से वसुंधरा और चंद्रमा के भाई-बहन के प्रेम को हृदय से स्वीकार किया।

भाई जब चाहे, बहन से मिले और सुख-दुख करे। भारतीय सभ्यता को गढ़ने वाले ऋषियों ने इसी मंगलबेला को देख समझकर रिश्तों नातों की अटूट डोर बनाई जिसके प्रीति बंधन में आने वाली मानवता मर्यादा के साथ बंधी रहे। सूर्य नारायण पिता बने और भूमि माता। वेदों ने मंत्र गाया- माता भूमिः पुत्रोहम पृथिव्याः। चंद्रमा तब से ही भूमि पुत्रों के मामा कहे जाने लगे। सकल ब्रह्मांड में चारों ओर नगाड़े बज उठे थे। शहनाईयों के सुरमई नाद के अखंड आनंद में ब्रह्मा सब कुछ देखकर वैसे ही ध्यान मगन थे जैसे पुत्र के विवाह में पिता के आनंद को वही समझे जो पिता हो। ब्रह्माजी के अन्य मानसपुत्र सप्तऋषि सृजन के सत्य को प्रकट करने वाला महान वेदमंत्र पढ़ रहे थे, शिव-पार्वती ने ही तब उस प्रथम कन्यादान का कार्य अपने हाथों से पूर्ण किया था और सूर्य नारायणदेव ने पिता प्रजापति ब्रह्म की आज्ञा से सिन्दूरदान की रस्म पूरी की।

जगत की सृजन बेला के दृश्य को देखकर चतुर्दिक आनन्द समाया था। मंत्र पढ़ते और सुनते हुए समस्त देवगणों और सप्त ऋषियों की आंखें भर आईं। साखोच्चार गाया जाने लगा। ऋषि कश्यप कहने लगे कि हे नारायण और लक्ष्मी, जब तक आप दोनों का यह जोड़ा अखंड और अमर रहेगा, तब तक जीवन का सृजन करने के लिए युग युग तक यह सिन्दूरदान ऐसे ही होता रहेगा। यही इस ब्रह्मांड का ध्रुव सत्य है। ध्रुव समेत ये समस्त तारे, बुध, शुक्र, बृहस्पति समेत ये सभी ग्रह इस बात के साक्षी हैं।

ऋषि अंगिरा ने कहा- हे नारायण, यह अग्नि जो आपके कारण प्रकट हुई है, यह अग्नि ही इस महामिलन का साक्षी है, इसे धारण कर अब आप दोनों एक दूसरे के साथ दायित्व के बंधन में बंध चुके हैं। आप दोनों के सारे कृत सांसारिक कार्य इस साक्षी अग्नि के द्वारा आप दोनों के माता-पिता निराकार ब्रह्मा-सरस्वतीजी और शिवजी-उमाजी तक पहुंचते रहेंगे। ये समस्त ग्रह आदि आप दोनों की ही सेवा में तब तक जुटे रहेंगे जबतक कि आप दोनों इस सृजन के खेल को आनन्दपूर्वक खेलते रहेंगे।

ऋषि वशिष्ठ ने वरदान दिया कि जीवन के प्रत्येक उषाकाल में आप प्रतिदिन इस पृथ्वी की मांग को अपने सिन्दूर से भरकर सुहागन करते रहेंगे और जीवन के अन्त में भी जब यह पृथ्वी घनी अंधेरी मृत्यु रूपी महारात्रि में विलीन होगी, तब आप ही उसकी मांग में अंतिम सिन्दूर भरकर उसे अन्तिम विदाई देकर अपने धरा-धाम वैकुंठ में उसी के साथ लौट जाएंगे। तब यह जगत फिर से अप्रकट हो जाएगा। जहां से आया है वहीं महाशिव की गोद में ही इसका महालय हो जाएगा। आप दोनों का साथ अमर और अनन्त है। अनन्त

शेषशायी आप लक्ष्मी के साथ चिर विश्राम में चले जाएंगे। भगवान विश्वकर्मा प्रजापति ने आशीर्वाद दिया कि- माता सरस्वती-ब्रह्मा और माता उमा-महेश्वर ब्रह्मांड के जिस आनन्द को अब तक निराकार निर्गुण रूप में देखते-समझते रहे हैं, उसे आप दोनों साकार रूप में देखेंगे और समझेंगे। आदिशक्ति भवानी ने जिस आनन्दलीला को देखने के लिए इस सृजन कार्य की प्रेरणा महाशिव को दी है, वह आप दोनों के ही संयोग से साकार और साक्षात पूर्ण होगी। मैं विश्वकर्मा प्रजापति सपरिवार साक्षात इस कार्य के लिए युग-युग तक आप दोनों के साथ रहेंगे।

इस प्रकार दसों प्रजापति और सप्त ऋषियों ने वर-वधू से अग्नि की चारों दिशाओं में चार परिक्रमा कर एक दूसरे को सात वचनों की सप्तपदी से बांध दिया। अपनी लीला से ही नारायण और पृथ्वी एक दूसरे के बंधन में बंध गए। समस्त जीव-जगत दोनों को अपने शरीर के भीतर अन्तर्यामी रूप में पाकर प्रसन्न हो गया। समस्त जीव-शरीर पृथ्वी के मातृत्व भाव से भर उठा। मृत्तिका रूपी मिट्टी से बना पंचभूतात्मक शरीर और उसके साथ नारायण के पितृत्व की चैतन्य रूपी अग्नि का संयोग पाकर संसारी जीव जन्म लेने लगे, लेते आ रहे हैं।

और जब लक्ष्मी रूपा वसुंधरापृथ्वी सूर्यनारायण का वरण कर उनके साथ अपने माता-पिता के बताए मंगलकारी लोक-सृजन पथ पर सदा के लिए चल पड़ी तो दोनों ही ओर आंसू बरसने लगे। शिव और पार्वती, ब्रह्म और ब्राह्मी दोनों ने एक दूसरे को पहले तो हंसी-खुशी विदाई दी, लेकिन जब बेटी को छोड़ने की बारी आई तो दोनों बिलख उठे। जो पृथ्वी आदिशक्ति भवानी के अंगरूप में अपनी मां की शीतल छाया में सम्पूर्ण ब्रह्मांड में इठलाती इतराती मातर-पुत्रिका रूप में घूमती-विचरती थी, उसके नाजुक कंधों पर संसार को जन्म देने का विकट भार जो आने वाला है, यही सोचकर पार्वती की आंख भर आती थी कि मेरी भूमि फिर वैसी कभी नहीं रहेगी, जैसी अक्षत, अल्हड़ वह अपनी मां-पिता की छत्रछाया में रही है।

आंसू तो शिव की आंखों में भी थे, किन्तु वह उसे कहीं कोने में पोछ लेते थे। वही आंसुओं पर नियंत्रण नहीं रखेंगे तो रोती हुई पार्वती और पृथ्वी को आखिर कौन समझाएगा। जगत की कारणभूता उन जगदम्ब भवानी को समझाते हुए शिव ने तब कहा- पार्वती आंसू क्यों बहाती हो देवी। देखो, ये तो आपकी ही इच्छा से हुआ है। आपकी हमारी इच्छा रूपी पुत्री आज कितनी बड़ी हुई है, ये इच्छा आगे और फलीभूत होगी, बढ़ेगी। यह लोक का सृजन करेगी, इस जगत में व्यवस्था, अनुशासन, आनन्द और ममता का कारण बनेगी, यही इसके होने का हेतु है।

शिव ने फिर पार्वती को समझाया कि इच्छा को जन्म तो हम दोनों ने ही दिया है, किन्तु अब ये इच्छा मेरी और तुम्हारी नहीं रहेगी, यह तो अपने नारायण की है। इस इच्छा को बढ़ते हुए देखकर हम भी अपने सृजन के वास्तविक आनन्द को पाते रहेंगे। हे नारायण, इसे सुखी रखना, इसे हमने बड़े नाजों से पाला है। इसी इच्छा से संसार जन्म लेगा, लेता आया है, लेता रहेगा, किन्तु सत्य यही है कि अब ये इच्छा हमारी नहीं है, अब यह इच्छा नारायण आपकी है, अपने उस संसार की है जिसका इसके जरिए जन्म होगा, यह इच्छा नारायण के साथ अपने संसार का पालन-पोषण करेगी, वैसे ही जैसे, हे पार्वती, इस निराकार बियावान में हम दोनों समस्त निर्गुण लोक का पालन करते चले आ रहे हैं।

यही था वह प्रथम कन्यादान। पहला सिन्दूर दान। ऐसी 100 से अधिक रस्मों के साथ यह पाणिग्रहण संस्कार तब सात दिनों तक अर्थात प्रतिपदा से सप्तमी तक चला था। अष्टमी को कन्यापूजन और भोजन आदि विश्राम के साथ नवमी को नारायण संग वसुंधरा को शिव ने विदाई दी। दशमी को पृथ्वी जब नारायण के सिंहासन पर वामांगिनी बनकर विराजमान हुईं तो शून्य से शुरु हुई ब्रह्मांड की सृजन यात्रा को प्रथम पूर्ण विश्राम मिला। जो एक था वह अचानक ही बढ़कर दस हो गया, अंकों की यात्रा भी पूर्ण हुई क्योंकि उस एक और शून्य का मिलन पूर्ण हो चुका था। एकेश्वर नारायण अपनी अभिन्न शक्ति के साथ विधिविधान पूर्वक एकात्म हो चुके थे। अपनी शक्ति के कारण ही वह एक अनंत की ओर बढ़ चला था।

युग युग से अनबुझ पहेली सा यह खेल चला आ रहा है, चलता ही रहेगा। जो जान लेता है, आनन्दवत होकर पार हो जाता है। जो नहीं जानता है, वह जीवन को दुःख और विषाद मानकर रोता है।

ऋतूनां कुसुमाकरः

संजय तिवारी

बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छन्दसामहम् ।
मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः ॥

श्रीमद्भगवद्गीता के दसवे अध्याय का पैंतीसवां श्लोक। भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते है ,जो ऋतुओ में कुसुमाकर अर्थात वसंत है, वह मैं ही तो हूँ। यही कुसुमाकर तो प्रिय विषय है सृजन का। यही कुसुमाकर मौसम है कुसुम के एक एक दल को पल्लवित होने का। अमराइयों में मंजरियो के रससिक्त होकर महकने और मधुमय पराग लिए उड़ाते भौरों के गुनगुना उठाने की ऋतु है वसंत। प्रकृति के श्रृंगार की ऋतु। वसंत तो सृजन का आधार बताया गया है। सृष्टि के दर्शन का सिद्धान्त बन कर कुसुमाकर ही स्थापित होता है। यही कारण है कि सीजन और काव्य के मूल में तत्व के रूप में इसकी स्थापना दी गयी है।

> **बुद्धचरित में भी बसंत ऋतु का जीवंत वर्णन मिलता है। भारवि के किरातार्जुनीयम, शिशुपाल वध, नैषध चरित, रत्नाकर कृत हरिविजय, श्रीकंठ चरित, विक्रमांक देव चरित, श्रृंगार शतकम, गीतगोविन्दम्, कादम्बरी, रत्नावली, मालतीमाधव और प्रसाद की कामायनी में बसंत को महत्त्वपूर्ण मानकर इसका सजीव वर्णन किया गया है। कालिदास ने बसंत के वर्णन के बिना अपनी किसी भी रचना को नहीं छोड़ा है। मेघदूत में यक्षप्रिया के पदों के आघात से फूट उठने वाले अशोक और मुख मदिरा से खिलने वाले वकुल के द्वारा कवि बसंत का स्मरण करता है।**

सृष्टि की आदि श्रुति ऋग्वेद की अनेक ऋचाओं में रचनाओं से लेकर वर्तमान साहित्यकारों ने भी अपनी सौंदर्य-चेतना के प्रस्फुटन के लिए प्रकृति की ही शरण ली है। शस्य श्यामला धरती में सरसों का स्वर्णिम सौंदर्य, कोकिल के मधुर गुंजन से झूमती सघन अमराइयों में गुनगुनाते भौरों पर थिरकती सूर्य की रशिमयां, कामदेव की ऋतुराज 'बसंत' का सजीव रूप कवियों की उदात्त कल्पना से मुखरित हो उठता है। उपनिषद, पुराण-महाभारत, रामायण (संस्कृत) के अतिरिक्त हिन्दी, प्राकृत, अपभ्रंश की काव्य धारा में भी बसंत का रस भलीभांति व्याप्त रहा है। अर्थवेद के पृथ्वीसूत्र में भी बसंत का व्यापक वर्णन मिलता है। महर्षि वाल्मीकि ने भी बसंत का व्यापक वर्णन किया है। किष्किंधा कांड में पम्पा सरोवर तट इसका उल्लेख मिलता है-

अयं वसन्तः सौ, मित्रे नाना विहग नन्दिता।

बुद्धचरित में भी बसंत ऋतु का जीवंत वर्णन मिलता है। भारवि के किरातार्जुनीयम, शिशुपाल वध, नैषध चरित, रत्नाकर कृत हरिविजय, श्रीकंठ चरित, विक्रमांक देव चरित, श्रृंगार शतकम, गीतगोविन्दम्, कादम्बरी, रत्नावली, मालतीमाधव और प्रसाद की कामायनी में बसंत को महत्त्वपूर्ण मानकर इसका सजीव वर्णन किया गया है। कालिदास ने बसंत के वर्णन के बिना अपनी किसी भी रचना को नहीं छोड़ा है। मेघदूत में यक्षप्रिया के पदों के आघात से फूट उठने वाले अशोक और मुख मदिरा से खिलने वाले वकुल के द्वारा कवि बसंत का स्मरण करता है। कवि को बसंत में सब कुछ सुन्दर लगता है।

कालिदास ने 'ऋतु संहार' में बसंत के आगमन का सजीव वर्णन किया है-

द्रुमा सपुष्पाः सलिलं सपदमंस्त्रीयः पवनः सुगंधिः।
सुखा प्रदोषाः दिवासश्च रम्याःसर्वप्रियं चारुतरे वतन्ते॥

यानी बसंत में जिनकी बन आती है उनमें भ्रमर और मधुमक्खियाँ भी हैं। 'कुमारसंभवम्'

में कवि ने भगवान शिव और पार्वती को भी नहीं छोड़ा है। कालिदास बसंत को श्रृंगार दीक्षा गुरु की संज्ञा भी देते हैं-

प्रफूल्ला चूतांकुर तीक्ष्ण शयको,द्विरेक माला विलसद धर्नुगुणः
मनंति भेत्तु सूरत प्रसिंगानां,वसंत योध्दा समुपागतः प्रिये।

वृक्षों में फूल आ गये हैं, जलाशयों में कमल खिल उठे हैं, स्त्रियाँ सकाम हो उठी हैं, पवन सुगंधित हो उठी है, रातें सुखद हो गयी हैं और दिन मनोरम, ओ प्रिये! बसंत में सब कुछ पहले से और सुखद हो उठा है।

हरिवंश, विष्णु तथा भागवत पुराणों में बसंतोत्सव का वर्णन है। माघ ने 'शिशुपाल वध' में नये पत्तों वाले पलाश वृक्षों तथा पराग रस से परिपूर्ण कमलों वाली तथा पुष्प समूहों से सुगंधित बसंत ऋतु का अत्यंत मनोहारी शब्दों वर्णन किया है।

नव पलाश पलाशवनं पुरः स्फुट पराग परागत पंवानम्
मृदुलावांत लतांत मलोकयत् स सुरभि-सुरभि सुमनोमरैः

प्रियतम के बिना बसंत का आगमन अत्यंत त्रासदायक होता है। विरह-दग्ध हृदय में बसंत में खिलते पलाश के फूल अत्यंत कुटिल मालूम होते हैं तथा गुलाब की खिलती पंखुड़ियाँ विरह-वेदना के संताप को और अधिक बढ़ा देती हैं। महाकवि विद्यापति कहते है -

मलय पवन बह, बसंत विजय कह,
भ्रमर करई रोल, परिमल नहि ओल।
ऋतुपति रंग हेला, हृदय रभस मेला।
अनंक मंगल मेलि, कामिनि करथु केलि।
तरुन तरुनि संङ्गे, रहनि खपनि रंङ्गे।

विद्यापति की वाणी मिथिला की अमराइयों में गूंजी थी। बसंत के आगमन पर प्रकृति की पूर्ण नवयौवना का सुंदर व सजीव चित्र उनकी लेखनी से रेखांकित हुआ है-

आएल रितुपति राज बसंत,छाओल अलिकुल माछवि पंथ।
दिनकर किरन भेल पौगड़,केसर कुसुम घएल हेमदंड।

हिन्दी साहित्य का आदिकालीन रास-परम्परा का 'वीसलदेव रास' कवि नरपतिनाल्हदेव का अनूठा गौरव ग्रंथ है। इसमें स्वस्थ प्रणय की एक सुंदर प्रेमगाथा गाई गई है। प्राकृतिक वातावरण के प्रभाव से विरह-वेदना में उतार-चढ़ाव होता है। बसंत की छमार शुरू हो गई है, सारी प्रकृति खिल उठी है। रंग-बिरंगा वेष धारण कर सखियाँ आकर राजमती से कहती हैं-

चालऊ सखि! आणो पेयणा जाई, आज दी सई सु काल्हे नहीं।
पिउ सो कहेउ संदेसड़ा, हे भौंरा, हे काग।
ते धनि विरहै जरि मुई, तेहिक धुंआ हम्ह लाग।

विरहिणी विलाप करती हुई कहती है कि हे प्रिय, तुम इतने दिन कहाँ रहे, कहाँ भटक गए? बसंत यूं ही बीत गया, अब वर्षा आ गई है।

आचार्य गोविन्द दास के अनुसार-

विहरत वन सरस बसंत स्याम।
जुवती जूथ लीला अभिराम मुकलित सघन नूतन तमाल।
जाई जूही चंपक गुलाल पारजात मंदार माल।
लपटात मत्त मधुकरन जाल।

जायसी ने बसंत के प्रसंग में मानवीय उल्लास और विलास का वर्णन किया है-

फल फूलन्ह सब डार ओढ़ाई। झुंड बंधि कै पंचम गाई।
बाजहिं ढोल दुंदुभी भेरी। मादक तूर झांझ चहुं फेरी।
नवल बसंत नवल सब वारी। सेंदुर बुम्का होर धमारी।

भक्त कवि कुंभनदान ने बसंत का भावोद्दीपक रूप इस प्रकार प्रस्तुत किया है-

मधुप गुंजारत मिलित सप्त सुर भयो हे हुलास,
तन मन सब जंतहि।
मुदित रसिक जन उमगि भरे है न पावत,
मनमथ सुख अंतहि।

कवि चतुर्भुजदास ने बसंत की शोभा का वर्णन इस प्रकार किया है-

फूली द्रुम बेली भांति भांति,
नव वसंत सोभा कही न जात।
अंग-अंग सुख विलसत सघन कुंज,
छिनि-छिनि उपजत आनंद पुंज।

कवि कृष्णदास ने बसंत के माहौल का वर्णन यूं किया है-

प्यारी नवल नव-नव केलि
नवल विटप तमाल अरुझी मालती नव वेलि,
नवल वसंत विहग कूजत मच्यो ठेला ठेलि।

सूरदास ने पत्र के रूप में बसंत की कल्पना की है-

ऐसो पत्र पटायो ऋतु वसंत, तजहु मान मानिन तुरंत,
कागज नवदल अंबुज पात, देति कमल मसि भंवर सुगात।

तुलसी दास के काव्य में बसंत की अमृतसुधा की मनोरम झांकी है-

सब ऋतु ऋतुपति प्रभाऊ, सतत बहै त्रिविध बाऊं
जनु बिहार वाटिका, नृप पंच बान की।

जनक की वाटिका की शोभा अपार है, वहां राम और लक्ष्मण आते हैं-

भूप बागु वट देखिऊ जाई, जहं बसंत रितु रही लुभाई।

घनांद का प्रेम काव्य-परम्परा के कवियों से सर्वोच्च स्थान पर है। ये स्वच्छंद, उन्मुक्त व विशुध्द प्रेम तथा गहन अनुभूति के कवि हैं। प्रकृति का माधुर्य प्रेम को उद्दीप्त करने में अपनी विशेष विशिष्टता रखता है।

कामदेव ने वन की सेना को ही बसंत के समीप लाकर खड़ा कर दिया-

राज रचि अनुराग जचि, सुनिकै घनानंद बांसुरी बाजी।
फैले महीप बसंत समीप, मनो करि कानन सैन है साजी।

रीतिकालीन कवियों ने जगह-जगह बसंत का सुंदर वर्णन किया है। आचार्य केशव ने बसंत को दम्पत्ति के यौवन के समान बताया है। जिसमें प्रकृति की सुंदरता का वर्णन है। भंवरा डोलने लगा है, कलियाँ खिलने लगी हैं यानी प्रकृति अपने भरपूर यौवन पर है। आचार्य केशव ने इस कविता में प्रकृति का आलम्बन रूप

में वर्णन किया है-

दंपति जोबन रूप जाति लक्षणयुत सखिजन,
कोकिल कलित बसंत फूलित फलदलि अलि उपवन।

बिहारी प्रेम के संयोग-पक्ष के चतुर चितेरे हैं। 'बिहारी सतसई' उनकी विलक्षण प्रतिभा का परिचायक है। कोयल की कुहू-कुहू तथा आम्र-मंजरियों का मनोरम वर्णन देखिए-

वन वाटनु हपिक वटपदा, ताकि विरहिनु मत नैन।
कुहो-कुहो, कहि-कहिं उबे, करि-करि रीते नैन।
हिये और सी ले गई, डरी अब छिके नाम।
दूजे करि डारी खदी, बौरी-बौरी आम।

'पद्माकर' ने गोपियों के माध्यम से श्रीकृष्ण को वसंत का संदेश भेजा है-

पात बिन कीन्हे ऐसी भांति गन बेलिन के,
परत न चीन्हे जे थे लरजत लुंज है।
कहै पदमाकर बिसासीया बसंत कैसे,
ऐसे उत्पात गात गोपिन के भुंज हैं।
ऊधो यह सूधो सो संदेसो कहि दीजो भले,
हरि सों हमारे हयां न फूले बन कुंज है।

ऋतू वर्णन जब करते है तब पद्माकर फिर गाते है -

कूलन में केलि में कछारन में कुंजन में
क्यारिन में कलिन में कलीन किलकंत है।
कहे पद्माकर परागन में पौनहू में
पानन में पीक में पलासन पगंत है
द्वार में दिसान में दुनी में देस-देसन में
देखौ दीप-दीपन में दीपत दिगंत है
बीथिन में ब्रज में नवेलिन में बेलिन में
बनन में बागन में बगरयो बसंत है

कवि 'देव' की नायिका बसंत के भय से विहार करने नहीं जाती, क्योंकि बसंत पिया की याद दिलायेगा-

देव कहै बिन कंस बसंत न जाऊं, कहूं घर बैठी रहौ री
हूक दिये पिक कूक सुने विष पुंज, निकुंजनी गुंजन भौंरी।

सेनापति ने बसंत ऋतु का अलंकार प्रधान करते हुए बसंत के राजा के साथ रूपक संजोया है-

बरन-बरन तरू फूल उपवन-वन
सोई चतुरंग संग दलि लहियुत है,
बंदो जिमि बोलत बिरद वीर कोकिल,
गुंजत मधुप गान गुन गहियुत है,
ओबे आस-पास पहुपन की सुबास सोई
सोंधे के सुगंध मांस सने राहियुत है।

आधुनिक कवियों की लेखनी से भी बसंत अछूता नहीं रहा। रीति काल में तो वसंत कविता के सबसे आवश्यक टेव के रूप में उभर कर स्थापित हुआ है। महादेवी वर्मा की अपनी वेदनायें उदात्त और गरिमामयी हैं-

मैं बनी मधुमास आली!
आज मधुर विषाद की घिर करुण आई यामिनी,
बरस सुधि के इन्दु से छिटकी पुलक की चाँदनी
उमड़ आई री, दृगों में
सजनि, कालिन्दी निराली!
रजत स्वप्नों में उदित अपलक विरल तारावली,
जाग सुक-पिक ने अचानक मदिर पंचम तान लीं
बह चली निश्वास की मृदु
वात मलय-निकुंज-वाली!
सजल रोमों में बिछे है पाँवड़े मधुस्नात से,
आज जीवन के निमिष भी दूत है अज्ञात से
क्या न अब प्रिय की बजेगी
मुरलिका मधुराग वाली?

मैथिलीशरण गुप्त ने उर्मिला के असाधारण रूप का चित्रण किया है। उर्मिला स्वयं रोदन का पर्याय है। अपने अश्रुओं की वर्षा से वह प्रकृति को हरा-भरा करना चाहती है-

हंसो-हंसो हे शशि फलो-फूलो,
हंसो हिंडोरे पर बैठ झूलो।
यथेष्ट मैं रोदन के लिए हूं,
झड़ी लगा दूं इतना पिये हूं।

जयशंकर प्रसाद तो वसंत से सवाल ही पूछ लेते है - पतझड़ ने जिन वृक्षों के पत्ते भी गिरा दिये थे, उनमें तूने फूल लगा दिये हैं। यह कौन से मंत्रपढ़कर जादू किया है-

रे बसंत रस भने कौन मंत्र पढ़ि दीने तूने

कामायानी में जयशंकर प्रसाद ने श्रध्दा को बसंत-दूत के रूप में प्रस्तुत किया है-

कौन हो तुम बसंत के दूत?
विरस पतझड़ में अति सुकुमार
घन तिमिर में चपला की रेख
तमन में शीतल मंद बयार।

सुमित्रानंदन पंत के लिए प्रकृति जड़ वस्तु नहीं, सुंदरता की सजीव देवी बन उनकी सहचरी रही-

दो वसुधा का यौवनसार,गूंज उठता है जब मधुमास।
विधुर उर कैसे मृदु उद्गार,कुसुम जब खिल पड़ते सोच्छवास।
न जाने सौरस के मिस कौन,संदेशा मुझे भेजता मौन।

अज्ञेय ने अपने घुमक्कड़ जीवन में बसंत को भी बहुत करीब से देखा है, अपनी 'बसंत आया' कविता शीर्षक में कहा है-

बसंत आया तो है,
पर बहुत दबे पांव,
यहां शहर में,
हमने बसंत की पहचान खो दी है,
उसने बसंत की पहचान खो दी है,
उसने हमें चौंकाया नहीं।
अब कहाँ गया बसंत?

मध्य युग में भी बसंत का दृश्य जगत अपने रूप में अधिक मादक हैं। इस समय जो भी रचनाये हुई उनमे वसंत को खूब जगह दी गयी। इसी भावना से ओतप्रोत होकर शाहआलम विरही प्रेमियों के दुख को इन शब्दों में रेखांकित करते हैं-

प्यारे बिना सखि कहा करूं
जबसे रितु नीकी बसंत की आई

महाकवि सोहनलाल द्विवेदी लिखते हैं -

आया वसंत आया वसंत
छाई जग में शोभा अनंत।

सरसों खेतों में उठी फूल
बौरें आमों में उठीं झूल
बेलों में फूले नये फूल

पल में पतझड़ का हुआ अंत
आया वसंत आया वसंत।

लेकर सुगंध बह रहा पवन
हरियाली छाई है बन बन,
सुंदर लगता है घर आँगन

है आज मधुर सब दिग दिगंत
आया वसंत आया वसंत।

भौरे गाते हैं नया गान,
कोकिला छेड़ती कुहू तान
हैं सब जीवों के सुखी प्राण,

इस सुख का हो अब नही अंत
घर-घर में छाये नित वसंत।

प्रकृति बसन्त ऋतु में श्रृंगार करती है। दिशाएं प्राकृतिक सुषमा से शोभित हो जाती हैं। शीतल, मंद, सुगंधित बयार जन-जन के प्राणों में हर्ष का नव-संचार करती है। पुष्प, लताएं तथा

फल शीतकाल के कोहरे से मुक्ति पाकर नये सिरे से पल्लवित तथा पुष्पित हो उठते हैं। बसंत हमारी चेतना को खोलता है, पकाता है, रंग भरता है। नवागंतुक कोपलें हर्ष और उल्लास का वातावरण बिखेर कर चहुंदिशा में एक सुहावना समा बांध देती हैं। प्रकृति सरसों के पुष्परूपी पीतांबर धारण करके बसंत के स्वागत के लिए आतुर हो उठती है। टेसू के फूल चटककर और अधिक लाल हो उठते हैं। आम के पेड़ मंजरियों से लद जाते हैं। भौरों की गुंजन सबको अपनी ओर आकर्षित करने लगती है। बसंत ऋतु का प्रभाव जनमानस को उल्लासित करता हुआ होली के साथ विविध रंगों की बौछारों से समाहित होता रहता है। बसंत ऋतु का आगमन प्रकृति का भारत भूमि को सुंदर उपहार है।

बसंत का आगमन होते ही शीत ऋतु की मार से ठिठुरी धरा उल्लसित हो उठती है। प्राणी-मात्र के जीवन में सौंदर्य हिलोरें ठाठें मारने लग जाती हैं। वनों-बागों तथा घर-आंगन की फुलवारी भी इस नवागंतुक मेहमान के स्वागतार्थ उल्लसित हो उठती है। इन सभी दृश्यों को देखकर भला एक कवि के मन को कविता लिखने की प्रेरणा क्यों न मिले। कवि तो अधिक संदेनशील होता है यही कारण है कि उसकी लेखनी बसंत के सौन्दर्य-वर्णन से अछूती नहीं रह पाती। कवियों ने बसंत का दिल खोलकर वर्णन किया है। उसका स्वागत किया है।

महाप्राण निराला और ऋतुराज

डॉ0 मुन्ना तिवारी

> निराला का साहित्य व हिंदी कविता में क्रांतिकारी बदलाव लाने में उनका महत्व आज भारतीय साहित्य के औसत पाठक-छात्र के लिए अजाना ही बना हुआ है परंतु अबे सुन वे गुलाब।।।जैसी कविताओं के माध्यम से उन्होंने जिस व्यवस्था को ललकारा था, दुर्भाग्य से आज भी हम उसी व्यवस्था के अंग बने हुए हैं और उस व्यवस्था में सुधार की अपेक्षा और गिरावट आ गई है।

लेखक बुन्देखण्ड विश्वविद्यालय झांसी में हिन्दी विभाग के आचार्य और साहित्यकार हैं।

सखि, वसन्त आया।
भरा हर्ष वन के मन,
नवोत्कर्ष छाया।
किसलय-वसना नव-वय-लतिका
मिली मधुर प्रिय-उर तरु-पतिका,
मधुप-वृन्द बन्दी- पिक-स्वर नभ
सरसाया।

लता-मुकुल-हार-गन्ध-भार भर
बही पवन बन्द मन्द मन्दतर,
जागी नयनों में वन-यौवन की माया।
आवृत सरसी-उर-सरसिज उठे,
केशर के केश कली के छुटे,
स्वर्ण-शस्य-अञ्चल
पृथ्वी का लहराया।

> हिंदी जगत को अपने आलोक से प्रकाशवान करने वाले हिंदी साहित्य के 'सूर्य' पर मां सरस्वती का विशेष आशीर्वाद था। उनके साहित्य से प्रेम करने वाले पाठकों को जानकार आश्चर्य होगा कि आज छायावाद की उत्कृष्ट कविताओं में गिनी जाने वाली उनकी पहली कविता 'जूही की कली' को तत्कालीन प्रमुख साहित्यिक पत्रिका 'सरस्वती' में प्रकाशन योग्य न मानकर संपादक महावीर प्रसाद द्विवेदी ने लौटा दिया था।

वसंत ॠतु में जिस तरह प्रकृति अपने अनुपम सौंदर्य से सबको सम्मोहित करती है, उसी प्रकार वसंत पंचमी के दिन जन्मे निराला ने अपनी अनुपम काव्य कृतियों से हिंदी साहित्य में वसंत का अहसास कराया था। उन्होंने अपनी अतुलनीय कविताओं, कहानियों, उपन्यासों और छंदों से साहित्य को समृद्ध बनाया।

उनका जन्म 1896 की वसंत पंचमी के दिन बंगाल के मेदनीपुर जिले में हुआ था। हाईस्कूल पास करने के बाद उन्होंने घर पर ही संस्कृत और अंग्रेजी साहित्य का अध्ययन किया। नामानुरूप उनका व्यक्तित्व भी निराला था। हिंदी जगत को अपने आलोक से प्रकाशवान करने वाले हिंदी साहित्य के 'सूर्य' पर मां सरस्वती का विशेष आशीर्वाद था। उनके साहित्य से प्रेम करने वाले पाठकों को जानकार आश्चर्य होगा कि आज छायावाद की उत्कृष्ट कविताओं में गिनी जाने वाली उनकी पहली कविता 'जूही की कली' को तत्कालीन प्रमुख साहित्यिक पत्रिका 'सरस्वती' में प्रकाशन योग्य न मानकर संपादक महावीर प्रसाद द्विवेदी ने लौटा दिया था। इस कविता में निराला ने छंदों की के बंधन को तोड़कर अपनी अभिव्यक्ति को छंदविहीन कविता के रूप में पेश किया, जो आज भी लोगों के जेहन में बसी है। वह खड़ी बोली के कवि थे, लेकिन ब्रजभाषा व अवधी भाषा में भी उन्होंने अपने मनोभावों को बख़ूबी प्रकट किया। 'अनामिका,' 'परिमल', 'गीतिका', 'द्वितीय अनामिका', 'तुलसीदास', 'अणिमा', 'बेला', 'नए पत्ते', 'गीत कुंज, 'आराधना', 'सांध्य काकली', 'अपरा' जैसे काव्य-संग्रहों में निराला ने साहित्य के नए सोपान रचे हैं। 'अप्सरा', 'अलका', 'प्रभावती', 'निरूपमा', 'कुल्ली भाट' और 'बिल्लेसुर' 'बकरिहा' शीर्षक से उपन्यासों, 'लिली', 'चतुरी चमार', 'सुकुल की बीवी', 'सखी' और 'देवी' नामक कहानी संग्रह भी उनकी साहित्यिक यात्रा की बानगी पेश करते हैं।निराला ने कलकत्ता (अब कोलकाता) से 'मतवाला' व 'समन्वय' पत्रिकाओं का संपादन भी किया।

निराला का साहित्य व हिंदी कविता में क्रांतिकारी बदलाव लाने में उनका महत्व आज भारतीय साहित्य के औसत पाठक-छात्र के लिए अजाना ही बना हुआ है परंतु अबे सुन वे गुलाब।।जैसी कविताओं के माध्यम से उन्होंने जिस व्यवस्था को ललकारा था, दुर्भाग्य से आज भी हम उसी व्यवस्था के अंग बने हुए हैं और उस व्यवस्था में सुधार की अपेक्षा और गिरावट आ गई है। कुकुरमुत्ता, चतुरी चमार, बिल्लेसुर बकरिहा जैसी रचनाओं के माध्यम से राजनीति व समाज पर समसामयिक प्रभाव की व्याख्या उन्होंने की, तो वह बड़ा जोखिम ही था।

वह समाजवादी नहीं थे, परंतु हमारी ऊंच-नीच की खाई वाली व्यवस्था से असंतुष्ट तो थे। तभी तो उन्होंने गुलाब के फूल को भी नहीं छोड़ा। रंग और सुगंध पर अकड़ने को उन्होंने खूब ललकारा है।

हिंदी कविता में छायावाद के चार महत्वपूर्ण स्तंभों जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत और महादेवी वर्मा के साथ अपनी सशक्त गिनती कराने वाले निराला की रचनाओं में एकरसता का पुट नहीं है।स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद और गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर से प्रभावित निराला की रचनाओं में कहीं आध्यात्म की खोज है तो कहीं प्रेम की सघनता है, कहीं असहायों के प्रति संवेदना हिलोर लेती उनके कोमल मन को दर्शाती है, तो कहीं देश-प्रेम का जज्बा दिखाई देता है, कहीं वह सामाजिक रूढ़ियों को तोड़ने को आतुर दिखाई देते हैं तो कहीं प्रकृति के प्रति उनका असीम प्रेम प्रस्फुटित होती है।

निराला को छायावादी कविता का

सुकुमार कहा जाता है, परंतु सही अर्थों में वह लालित्यमय, संस्कृतनिष्ठ वासंती वातावरण के बीच उपजे एक दुर्लभ ऑर्किड थे। यह वह युग था, जब हिंदी भाषा भारतीयता का पावन पथ मान ली गई थी। साहित्य में भौतिक सचाई कम, अभौतिक मिलन-विरह, इच्छापूर्ति-अपूर्ति का द्वैतभरा एक भव्य रुदन या उल्लासमय जादू ही कवि सम्मेलनों, संस्थानों व पत्र-पत्रिकाओं में छाया हुआ था। और इसी वातावरण में निराला ऐसी आंधी बनकर आए कि उन्होंने देखते-देखते तुकांत कोमल और हवा-हवाई अमूर्तन को चीरते हुए कवि तथा कविता की छुईमुई छवि को तिनका सिद्ध कर दिया। 40 के दशक में निराला का कुकुरमुत्ता जैसा अक्खड़ किंतु अद्भुत रूप से पठनीय काव्य संकलन छपा। यह संकलन हिंदी साहित्य का एक बिलकुल नया द्वार युवा लेखकों तथा पाठक वर्ग के लिए खोलता था, जो राज-समाज के स्तर पर अनेक प्रकार की भौतिक परेशानियों और मोहभंग के दुःख से जूझ रहा था। उन युवाओं की तरह निराला स्वयं अकाल, दुष्काल, बमबारी वाले बीसवीं सदी के शुरुआती दौर में गरीबी, सामाजिक जड़ता, प्रियजनों की अकाल मौत देख-जी चुके थे। अपनी रचनाओं तथा पत्राचार के पन्नों में वे हमको चौंकाने वाली बेबाकी से बताते हैं कि दो महायुद्धों के बीच के अर्धसामंती, अर्धखेतिहर राज-समाज में बैसवाड़े के सामान्य ब्राह्मण परिवार की परंपराओं और गांधी की आंधी व सुधारवादी नएपन की चुनौतियों के बीच किशोरवय से ही उनका संवेदनशील मन किस तरह मथा जाता रहा था। उनकी कविताओं में नियमानुशासन का बोध तो है, पर मृत हो चुके नियमों से ईमानदार चिढ़ व खीझ भी है। गांधी का जादू अंत तक निराला को भी बांधे रहा। कविता में अपने समय में सामाजिक वर्जनाओं और आमो-खास की भावनाओं का द्वैत ही नहीं, हिंदी के प्रतिष्ठान की जड़ता और दास्यभरी मानसिकता को भी खूब लपेटा है।

सन् 1920 के आस-पास अपनी साहित्यिक यात्रा शुरू करने वाले निराला ने 1961 तक अबाध गति से लिखते हुए अनेक कालजयी रचनाएं कीं और उनकी लोकप्रियता के साथ फक्कड़पन को कोई दूसरा कवि छू तक न सका।'मतवाला' पत्रिका में 'वाणी' शीर्षक से उनके कई गीत प्रकाशित हुए। गीतों के साथ ही उन्होंने लंबी कविताएं लिखना भी आरंभ किया।सौ पदों में लिखी गई तुलसीदास निराला की सबसे बड़ी कविता है, जिसे 1934 में उन्होंने कलमबद्ध किया और 1935 में सुधा के पांच अंकों में किस्तवार इसका प्रकाशन हुआ।साहित्य को अपना महत्वूपर्ण योगदान देने वाले निराला की लेखनी अंत तक नित नई रचनाएं रचती रहीं। 22 वर्ष की अल्पायु में पत्नी से बिछोह के बाद जीवन का वसंत भी उनके लिए पतझड़ बन गया और उसके बाद अपनी पुत्री सरोज के असामायिक निधन से शोक संतप्त निराला अपने जीवन के अंतिम वर्षो में मनोविक्षिप्त-से हो गए थे। लौकिक जगत को अपनी अविस्मरणीय रचनाओं के रूप में अपनी यादें सौंपकर 15 अक्टूबर, 1961 को महाप्राण अपने प्राण त्यागकर इस लोक को अलविदा कह गए, लेकिन अपनी रचनात्मकता को साहित्य प्रेमियों के जेहन में अंकित कर निराला काव्यरूप में आज भी हमारे बीच हैं। महाप्राण निराला को विश्लेषित करते हुए तभी तो रामविलास शर्मा जैसे समालोचक को भी कहना पड़ा -

यह कवि अपराजेय निराला,
जिसको मिला गरल का प्याला;
ढहा और तन टूट चुका है,
पर जिसका माथा न झुका है;
शिथिल त्वचा ढल-ढल है छाती,
लेकिन अभी संभाले थाती,
और उठाए विजय पताका।

यह कवि है अपनी जनता का। ऐसे महाप्राण निराला को शत् शत् नमन !

40 के दशक में निराला का कुकुरमुत्ता जैसा अक्खड़ किंतु अद्भुत रूप से पठनीय काव्य संकलन छपा। यह संकलन हिंदी साहित्य का एक बिलकुल नया द्वार युवा लेखकों तथा पाठक वर्ग के लिए खोलता था, जो राज-समाज के स्तर पर अनेक प्रकार की भौतिक परेशानियों और मोहभंग के दुःख से जूझ रहा था। उन युवाओं की तरह निराला स्वयं अकाल, दुष्काल, बमबारी वाले बीसवीं सदी के शुरुआती दौर में गरीबी, सामाजिक जड़ता, प्रियजनों की अकाल मौत देख-जी चुके थे।

जीवन में रस का उत्सव

अनिता अग्रवाल

यह रस का उत्सव है। जीवन में रस से परिपूर्ण वह ऊर्जा जो बसंत से शुरू होकर रंगोत्सव तक होली के रूप में चलती है और मानव जीवन को कुछ नया करने की प्रेरणा देती है। बसंत ऋतु और होली एक दूसरे के पर्याय जैसे बन गये हैं। बसंत पंचमी से शुरू होकर जो क्रम आगे बढ़ता है 'रंगोत्सव' उसका चरम है। राग-रंग का यह लोकप्रिय पर्व वसंत का संदेशवाहक भी है। राग अर्थात संगीत और रंग तो इसके प्रमुख अंग हैं ही, पर इनको उत्कर्ष तक पहुँचाने वाली प्रकृति भी इस समय रंग-बिरंगे यौवन के साथ अपनी चरम अवस्था पर होती है। फाल्गुन माह में मनाए जाने के कारण इसे फाल्गुनी भी कहते हैं।

लेखिका प्रख्यात कवयित्री एवं साहित्यकार हैं।

होली का त्योहार वसंत पंचमी से ही आरंभ हो जाता है। उसी दिन पहली बार गुलाल उड़ाया जाता है। इस दिन से फाग और धमार का गाना प्रारंभ हो जाता है। खेतों में सरसों खिल उठती है। बाग-बगीचों में फूलों की आकर्षक छटा छा जाती है। पेड़-पौधे, पशु-पक्षी और मनुष्य सब उल्लास से परिपूर्ण हो जाते हैं। खेतों में गेहूँ की बालियाँ इठलाने लगती हैं। किसानों का हृदय ख़ुशी से नाच उठता है। बच्चे-बूढ़े सभी व्यक्ति सब कुछ संकोच और रूढ़ियाँ भूलकर ढोलक-झाँझ-मंजीरों की धुन के साथ नृत्य-संगीत व रंगों में डूब जाते हैं। चारों तरफ़ रंगों की फुहार फूट पड़ती है। होली के दिन आम्र मंजरी तथा चंदन को मिलाकर खाने का बड़ा माहात्म्य है। होली भारत का अत्यंत प्राचीन पर्व है जो होली, होलिका या होलाका नाम से मनाया जाता था। वसंत की ऋतु में हर्षोल्लास के साथ मनाए जाने के कारण इसे वसंतोत्सव और काम-महोत्सव भी कहा गया है।

प्राचीन काल में भी इस पर्व का प्रचलन था लेकिन अधिकतर यह पूर्वी भारत में ही मनाया जाता था। इस पर्व का वर्णन अनेक पुरातन धार्मिक पुस्तकों में मिलता है। इनमें प्रमुख हैं, जैमिनी के पूर्व मीमांसा-सूत्र और कथा गार्ह्य-सूत्र। नारद पुराण और भविष्य

पुराण जैसे पुराणों की प्राचीन हस्तलिपियों और ग्रंथों में भी इस पर्व का उल्लेख मिलता है। विंध्य क्षेत्र के रामगढ़ स्थान पर स्थित ईसा से ३०० वर्ष पुराने एक अभिलेख में भी इसका उल्लेख किया गया है। संस्कृत साहित्य में वसन्त ऋतु और वसन्तोत्सव अनेक कवियों के प्रिय विषय रहे हैं।

मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में दर्शित कृष्ण की लीलाओं में भी होली का विस्तृत वर्णन मिलता है। इसके अतिरिक्त प्राचीन चित्रों, भित्तिचित्रों और मंदिरों की दीवारों पर इस उत्सव के चित्र मिलते हैं। विजयनगर की राजधानी हंपी के 16वी शताब्दी के एक चित्रफलक पर होली का आनंददायक चित्र उकेरा गया है। इस चित्र में राजकुमारों और राजकुमारियों को दासियों सहित रंग और पिचकारी के साथ राज दम्पत्ति को होली के रंग में रंगते हुए दिखाया गया है। 16वी शताब्दी की अहमदनगर की एक चित्र आकृति का विषय वसंत रागिनी ही है। इस चित्र में राजपरिवार के एक दंपत्ति को बगीचे में झूला झूलते हुए दिखाया गया है। साथ में अनेक सेविकाएँ नृत्य-गीत व रंग खेलने में व्यस्त हैं। वे एक दूसरे पर पिचकारियों से रंग डाल रहे हैं। मध्यकालीन भारतीय मंदिरों के भित्तिचित्रों और आकृतियों में होली के सजीव चित्र देखे जा सकते हैं। उदाहरण के लिए इसमें 17वी शताब्दी की मेवाड़ की एक कलाकृति में महाराणा को अपने दरबारियों के साथ चित्रित किया गया है। शासक कुछ लोगों को उपहार दे रहे हैं, नृत्यांगना नृत्य कर रही हैं और इस सबके मध्य रंग का एक कुंड रखा हुआ है। बूंदी से प्राप्त एक लघुचित्र में राजा को हाथीदाँत के सिंहासन पर बैठा दिखाया गया है जिसके गालों पर महिलाएँ गुलाल मल रही हैं।

होली के पर्व से अनेक कहानियाँ जुड़ी हुई हैं। इनमें से सबसे प्रसिद्ध कहानी है प्रह्लाद की। प्राचीन काल में हिरण्यकशिपु नाम का एक अत्यंत बलशाली असुर था। अपने बल के दर्प में वह स्वयं को ही ईश्वर मानने लगा था। उसने अपने राज्य में ईश्वर का नाम लेने पर ही पाबंदी लगा दी थी। हिरण्यकशिपु का पुत्र प्रह्लाद ईश्वर भक्त था। प्रह्लाद की ईश्वर भक्ति से क्रुद्ध होकर हिरण्यकशिपु ने उसे अनेक कठोर दंड दिए, परंतु उसने ईश्वर की भक्ति का मार्ग न छोड़ा। हिरण्यकशिपु की बहन होलिका को वरदान प्राप्त था कि वह आग मंर भस्म नहीं हो सकती। हिरण्यकशिपु ने आदेश दिया कि होलिका प्रह्लाद को गोद में लेकर आग में बैठे। आग में बैठने पर होलिका तो जल गई, पर प्रह्लाद बच गया। ईश्वर भक्त प्रह्लाद की याद में इस दिन होली जलाई जाती है। प्रतीक रूप से यह भी माना जता है कि प्रह्लाद का अर्थ आनन्द होता है। वैर और उत्पीड़न की प्रतीक होलिका (जलाने की लकड़ी) जलती है और प्रेम तथा उल्लास का प्रतीक प्रह्लाद (आनंद) अक्षुण्ण रहता है। प्रह्लाद की कथा के अतिरिक्त यह पर्व राक्षसी ढुंढी, राधा कृष्ण के रास और कामदेव के पुनर्जन्म से भी जुड़ा हुआ है। कुछ लोगों का मानना है कि होली में रंग लगाकर, नाच-गाकर लोग शिव के गणों का वेश धारण करते हैं तथा शिव की बारात का दृश्य बनाते हैं। कुछ लोगों का यह भी मानना है कि भगवान श्रीकृष्ण ने इस दिन पूतना नामक राक्षसी का वध किया था। इसी खुशी में गोपियों और ग्वालों ने रासलीला की और रंग खेला था।

होली की परंपराएँ भी अत्यंत प्राचीन हैं और इसका स्वरूप और उद्देश्य समय के साथ बदलता रहा है। प्राचीन काल में यह विवाहित महिलाओं द्वारा परिवार की सुख समृद्धि के लिए मनाया जाता था और पूर्ण चंद्र की पूजा करने की परंपरा थी। वैदिक काल में इस पर्व को नवात्रैष्टि यज्ञ कहा जाता था। उस समय खेत के अधपके अन्न को यज्ञ में दान करके प्रसाद लेने का विधान समाज में व्याप्त था। अन्न को होला कहते हैं, इसी से इसका नाम होलिकोत्सव पड़ा। भारतीय ज्योतिष के अनुसार चैत्र शुदी प्रतिपदा के दिन से नववर्ष का भी आरंभ माना जाता है। इस उत्सव के बाद ही चैत्र महीने का आरंभ होता है। अतः यह पर्व नवसंवत का आरंभ तथा वसंतागमन का प्रतीक भी है। इसी दिन प्रथम पुरुष मनु का जन्म हुआ था, इस कारण इसे मन्वादितिथि कहते हैं।

होली लौकिक व्यवहार में प्रमुख भारतीय त्योहार होने के साथ साधना की दृष्टि से भी विशेष तंत्रोक्त-मंत्रोक्त सिद्धमय महापर्व है।होली को पूर्व दिशा की ओर हवा चले तो राजा एवं प्रजा सुखी अर्थात पूरे राज्य में सुख शांति होगी। दक्षिण की ओर हवा चले तो राज्य की सत्ता भंग और शासन पक्ष को परेशानी, पश्चिम दिशा की ओर हवा चले तो तृण एवं सम्पत्ति बढ़ेगी और उत्तर की ओर हवा चले तो धान्य की वृद्धि होगी। यदि होली का धुआं आकाश की ओर सीधा जाए तो राजा का गढ़ टूटेगा और राज्य के बड़े नेताओं की कुर्सी जाएगी। होली की रात्रि सिद्धिदायक रात्रि मानी जाती है, इस रात्रि में तंत्र-मंत्र एवं साधनाओं का विशेष रूप से रुझान होता है क्योंकि इस रात्रि में सम्पन्न की गई छोटी से छोटी साधना एवं प्रयोग भी जीवन को बदल देने में समक्ष हैं। यह पर्व नई सिद्धियां हासिल करने का उत्तम अवसर है एवं पुरानी सिद्धियों को शक्ति सम्पन्न बनाने का भी।

रंगों का त्योहार और परम्पराएं

होली ऋतुओं के राजा 'वसंत' में मनाया जाने वाला महत्वपूर्ण भारतीय त्योहार है। वसंत शीत के बाद आती है। भारत में फरवरी और मार्च में इस ऋतु का आगमन होता है। वसंत बहुत सुहावनी ऋतु है। इस ऋतु में सम जलवायु रहती है अर्थात् सर्दी और गर्मी की अधिकता नहीं होती है। प्रकृति में कई प्रकार से सुखद बदलाव होते हैं। इसलिए इसे ऋतुओं का राजा या ऋतुराज भी कहा जाता है। होली हिंदू पंचांग के अनुसार फाल्गुन मास की पूर्णिमा को मनाया जाता है। 'रंगों का त्योहार' कहा जाने वाला यह पर्व पारंपरिक रूप से दो दिन मनाया जाता है।

भास्कर दूबे

"राग रंग का यह लोकप्रिय पर्व वसंत का सन्देश वाहक भी है। चूंकि यह पर्व वसंत ऋतु में बड़े ही हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है इसलिए इसे 'बसंतोत्सव' और 'काममहोत्सव' भी कहा गया है। राग(संगीत) और रंग तो इसके मुख्य अंग तो हैं ही पर इनको अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंचाने वाली प्रकृति भी इस समय रंग-बिरंगे यौवन के साथ अपनी चरम अवस्था पर होती है। सर्वत्र वातावरण बड़ा ही मनमोहक होता है।"

लेखक वरिष्ठ पत्रकार, सृष्टि संवाद भारती के सम्पादक और विद्या भारती पूर्वी उत्तर प्रदेश के सह प्रचार प्रमुख हैं।

होली के पहले दिन को होलिका जलायी जाती है, जिसे 'होलिका दहन' भी कहते है। दूसरे दिन, जिसे 'धुरड्डी', 'धुलेंडी', 'धुरखेल' या 'धूलिवंदन' कहा जाता है, लोग एक दूसरे पर रंग, अबीर-गुलाल इत्यादि फेंकते हैं, ढोल बजा कर होली के गीत गाये जाते हैं, और घर-घर जा कर लोगों को रंग लगाया जाता है। ऐसा माना जाता है कि होली के दिन लोग पुरानी कटुता को भूल कर गले मिलते हैं और फिर से दोस्त बन जाते हैं। एक दूसरे को रंगने और गाने-बजाने का दौर दोपहर तक चलता है। इसके बाद स्नान कर के विश्राम करने के बाद नए कपड़े पहन कर शाम को लोग एक दूसरे के घर मिलने जाते हैं, गले मिलते हैं और मिठाइयाँ खिलाते हैं।

राग-रंग का यह लोकप्रिय पर्व वसंत का संदेशवाहक भी है। राग अर्थात संगीत और रंग तो इसके प्रमुख अंग हैं ही, पर इनको उत्कर्ष तक पहुँचाने वाली प्रकृति भी इस समय रंग-बिरंगे यौवन के साथ अपनी चरम अवस्था पर होती है। फाल्गुन माह में मनाए जाने के कारण इसे फाल्गुनी भी कहते हैं। होली का त्योहार वसंत पंचमी से ही आरंभ हो जाता है। उसी दिन पहली बार गुलाल उड़ाया जाता है। इस दिन से फाग और धमार का गाना प्रारंभ हो जाता है।

वैदिक व पौराणिक महत्व

होली मनाने के लिए विभिन्न वैदिक व पौराणिक मत हैं। वैदिक काल में इस पर्व को 'नवान्नेष्टि' कहा गया है। इस दिन खेत के अधपके अन्न का हवन कर प्रसाद बांटने का विधान है। इस अन्न को होला कहा जाता है, इसलिए इसे होलिकोत्सव के रूप में मनाया जाता था। इस पर्व को नवसंवत्सर का आगमन तथा बसंतागम के उपलक्ष्य में किया हुआ यज्ञ भी माना जाता है। कुछ लोग इस पर्व को अग्निदेव का पूजन मात्र मानते हैं। मनु का जन्म भी इसी दिन का माना जाता है। अतः इसे मन्वादितिथि भी कहा जाता है। पुराणों के अनुसार भगवान शंकर ने अपनी क्रोधाग्नि से कामदेव को भस्म कर दिया था, तभी से यह त्योहार मनाने का प्रचलन हुआ।

ऐतिहासिक रूप में होली

राग रंग का यह लोकप्रिय पर्व वसंत का सन्देश वाहक भी है। चूंकि यह पर्व वसंत ऋतु में बड़े ही हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है इसलिए इसे 'बसंतोत्सव' और 'काममहोत्सव' भी कहा गया है। राग(संगीत) और रंग तो इसके मुख्य अंग तो हैं ही पर इनको अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंचाने वाली प्रकृति भी इस समय रंग-बिरंगे यौवन के साथ अपनी चरम अवस्था पर होती है। सर्वत्र वातावरण बड़ा ही मनमोहक होता है। यह त्यौहार फाल्गुन मास में मनाये जाने के कारण 'फाल्गुनी' के नाम से भी जाना जाता है और इस मास में चलने वाली बयारों का तो कहना ही क्या। हर प्राणी जीव इन बयारों का आनंद लेने के लिए मदमस्त हो जाता है। कोई तो अपने घरों में बंद होकर गवाक्षों से झाँक कर इस रंगीन छटा का आनंद लेता है और कोई खुले आम सर्वसम्मुख मदमस्त होकर लेता है।। यहाँ उम्र का कोई तकाज़ा नहीं बालक, बच्चे बूढ़े वृद्ध हर कोई रंगीनी मस्तियों में छा जाते हैं। मेरे मन में भी एक प्रश्न का छोटा सा अंकुर जन्मा कि आखिर इस रंगोत्सव की सुन्दर छटा का आनंद लेने के पीछे इसका इतिहास क्या है जो इसके आनंद लेने का सुख बड़ा ही अद्भुत है।

इस पर्व का वर्णन अनेक पुरातन धार्मिक पुस्तकों में मिलता है। इनमें प्रमुख हैं, जैमिनी के पूर्व मीमांसा-सूत्र और कथा गार्ह्य-सूत्र। नारद पुराण और भविष्य पुराण जैसे पुराणों की प्राचीन हस्तलिपियों और ग्रंथों में भी इस पर्व का उल्लेख मिलता है। विंध्य क्षेत्र के रामगढ़ स्थान पर स्थित ईसा से ३०० वर्ष पुराने एक अभिलेख में भी इसका उल्लेख किया गया है। संस्कृत साहित्य में वसन्त ऋतु और वसन्तोत्सव अनेक कवियों के प्रिय विषय रहे हैं।

सुप्रसिद्ध मुस्लिम पर्यटक अलबरूनी ने भी अपने ऐतिहासिक यात्रा संस्मरण में होलिकोत्सव का वर्णन किया है। भारत के अनेक मुस्लिम कवियों ने अपनी रचनाओं में इस बात का उल्लेख किया है कि होलिकोत्सव केवल हिंदू ही नहीं मुसलमान भी मनाते हैं। सबसे प्रामाणिक इतिहास की तस्वीरें हैं मुगल काल की और इस काल में होली के किस्से उत्सुकता जगाने वाले हैं। अकबर का जोधाबाई के साथ तथा जहाँगीर का नूरजहाँ के साथ होली खेलने का वर्णन मिलता है। अलवर संग्रहालय के एक चित्र में जहाँगीर को होली खेलते हुए दिखाया गया है। शाहजहाँ के समय तक होली खेलने का मुग़लिया अंदाज़ ही बदल गया था। इतिहास में वर्णन है कि शाहजहाँ के ज़माने में होली को ईद-ए-गुलाबी या आब-ए-पाशी (रंगों की बौछार) कहा जाता था। अंतिम मुगल बादशाह बहादुर शाह ज़फ़र के बारे में प्रसिद्ध है कि होली पर उनके मंत्री उन्हें रंग लगाने जाया करते थे। मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में दर्शित कृष्ण की लीलाओं में भी होली का विस्तृत वर्णन मिलता है।

इसके अतिरिक्त प्राचीन चित्रों, भित्तिचित्रों और मंदिरों

की दीवारों पर इस उत्सव के चित्र मिलते हैं। विजयनगर की राजधानी हंपी के 16वी शताब्दी के एक चित्रफलक पर होली का आनंददायक चित्र उकेरा गया है। इस चित्र में राजकुमारों और राजकुमारियों को दासियों सहित रंग और पिचकारी के साथ राज दम्पत्ति को होली के रंग में रंगते हुए दिखाया गया है। 16वी शताब्दी की अहमदनगर की एक चित्र आकृति का विषय वसंत रागिनी ही है। इस चित्र में राजपरिवार के एक दंपत्ति को बगीचे में झूला झूलते हुए दिखाया गया है। साथ में अनेक सेविकाएँ नृत्य-गीत व रंग खेलने में व्यस्त हैं। वे एक दूसरे पर पिचकारियों से रंग डाल रहे हैं। मध्यकालीन भारतीय मंदिरों के भित्तिचित्रों और आकृतियों में होली के सजीव चित्र देखे जा सकते हैं। उदाहरण के लिए इसमें 17वी शताब्दी की मेवाड़ की एक कलाकृति में महाराणा को अपने दरबारियों के साथ चित्रित किया गया है। शासक कुछ लोगों को उपहार दे रहे हैं, नृत्यांगना नृत्य कर रही हैं और इस सबके मध्य रंग का एक कुंड रखा हुआ है। बूंदी से प्राप्त एक लघुचित्र में राजा को हाथीदाँत के सिंहासन पर बैठा दिखाया गया है जिसके गालों पर महिलाएँ गुलाल मल रही हैं।

साहित्यिक रूप में होली

प्राचीन काल के संस्कृत साहित्य में होली के अनेक रूपों का विस्तृत वर्णन है। श्रीमद्भागवत महापुराण में रसों के समूह रास का वर्णन है। भगवान कृष्ण की लीलाओं में भी होली का वर्णन मिलता है । अन्य रचनाओं में 'रंग' नामक उत्सव का वर्णन है जिनमें हर्ष की प्रियदर्शिका व रत्नावली तथा कालिदास की कुमारसंभवम् तथा मालविकाग्निमित्रम् शामिल हैं।

कालिदास रचित ऋतुसंहार में पूरा एक सर्ग ही 'वसन्तोत्सव' को अर्पित है। भारवि, माघ और अन्य कई संस्कृत कवियों ने वसन्त की खूब चर्चा की है। चंद बरदाई द्वारा रचित हिंदी के पहले महाकाव्य पृथ्वीराज रासो में होली का वर्णन है।

भक्तिकाल और रीतिकाल के हिन्दी साहित्य में होली और फाल्गुन माह का विशिष्ट महत्व रहा है। आदिकालीन कवि विद्यापति से लेकर भक्तिकालीन सूरदास, रहीम, रसखान, पद्माकर, जायसी, मीराबाई, कबीर और रीतिकालीन बिहारी, केशव, घनानंद आदि अनेक कवियों को यह विषय प्रिय रहा है। चाहे वो सगुन साकार भक्तिमय प्रेम हो या निर्गुण निराकार भक्तिमय प्रेम या फिर नितान्त लौकिक नायक नायिका के बीच का प्रेम हो, फाल्गुन माह का फाग भरा रस सबको छूकर गुजरा है। होली के रंगों के साथ साथ प्रेम के रंग में रंग जाने की चाह ईश्वर को भी है तो भक्त को भी है, प्रेमी को भी है तो प्रेमिका को भी। मीरां बाई ने इस पद में कहा है –

रंग भरी राग भरी रागसूं भरी री।
होली खेल्यां स्याम संग रंग सूं भरी, री।।
उडत गुलाल लाल बादला रो रंग लाल।
पिचकाँ उडावां रंग रंग री झरी, री।।
चोवा चन्दण अरगजा म्हा, केसर णो गागर भरी री।
मीरां दासी गिरधर नागर, चेरी चरण धरी री।।

इस पद में मीरां ने होली के पर्व पर अपने प्रियतम कृष्ण को अनुराग भरे रंगों की पिचकारियों से रंग दिया है। मीरां अपनी सखि को सम्बोधित करते हुए कहती हैं कि, हे सखि मैं ने अपने प्रियतम कृष्ण के साथ रंग से भरी, प्रेम के रंगों से सराबोर होली खेली। होली पर इतना गुलाल उडा कि जिसके कारण बादलों का रंग भी लाल हो गया। रंगों से भरी पिचकारियों से रंग रंग की धारायें बह चलीं। मीरां कहती हैं कि अपने प्रिय से होली खेलने के लिये मैं ने मटकी में चोवा, चन्दन,अरगजा, केसर आदि भरकर रखे हुये हैं। मीरां कहती हैं कि मैं तो उन्हीं गिरधर नागर की दासी हूँ और उन्हीं के चरणों में मेरा सर्वस्व समर्पित है। इस पद में मीरां ने होली का बहुत सजीव वर्णन किया है।

महाकवि सूरदास ने वसन्त एवं होली पर 78 पद लिखे हैं। सूरदास जैसे नेत्रहीन कवि भी फाल्गुनी रंग और गंध की मादक धारों से बच न सके और उनके कृष्ण और राधा बहुत मधुर छेडख़ानी भरी होली खेलते हैं।

हरि संग खेलति हैं सब फाग।
इहिं मिस करति प्रगट गोपीः उर अंतर को अनुराग।।
सारी पहिरी सुरंग, कसि कंचुकी, काजर दे दे नैन।
बनि बनि निकसी निकसी भई ठाढी, सुनि माधो के बैन।।
डफ, बांसुरी, रुंज अरु महुआरि, बाजत ताल मृदंग।
अति आनन्द मनोहर बानि गावत उठति तरंग।।
एक कोध गोविन्द ग्वाल सब, एक कोध ब्रज नारि।
छांडि सकुच सब देतिं परस्पर, अपनी भाई गारि।।
मिली दस पांच अली चली कृष्नहिं, गहि लावतिं अचकाई।
भरि अरगजा अबीर कनक घट, देतिं सीस तैं नाई।।
छिरकतिं सखि कुमकुम केसरि, भुरकतिं बंदन धूरि।
सोभित हैं तनु सांझ समै घन, आये हैं मनु पूरि।।
दसहूं दिसा भयो परिपूरन, सूर सुरंग प्रमोद।
सुर बिमान कौतुहल भूले, निरखत स्याम बिनोद

सूर के कान्हा की होली देख तो देवतागण तक अपना कौतुहल न रोक सके और आकाश से निरख रहे हैं कि आज

कृष्ण के साथ ग्वाल बाल और सखियां फाग खेल रहे हैं। फाग के रंगों के बहाने ही गोपियां मानो अपने हृदय का अनुराग प्रकट कर रही हैं, मानो रंग रंग नहीं उनका अनुराग ही रंग बन गया है। सभी गोपियां सुन्दर साडी पहन कर, चित्ताकर्षक चोली पहन कर तथा अपनी आँखों में काजल लगा कर कृष्ण की पुकार सुन बन ठन कर अपने घरों से निकल पडींऔर होली खेलने के लिये आ खडी हुई हैं।

रसखान जैसे रस की खान कहलाने वाले कवि ने तो फाग लीला के अर्न्तगत अनेकों सवैय्ये रच डाले हैं।सभी एक से एक रस और रंग से सिक्त _

फागुन लाग्यो जब तें तब तें ब्रजमण्डल में धूम मच्यौ है।
नारि नवेली बचैं नहिं एक बिसेख यहै सबै प्रेम अच्यौ है।।
सांझ सकारे वहि रसखानि सुरंग गुलाल ले खेल रच्यौ है।
कौ सजनी निलजी न भई अब कौन भटु बिहिं मान बच्यौ है।।

एक गोपी अपनी सखि से फाल्गुन मास के जादू का वर्णन करते हुए कहती है,कि जबसे फाल्गुन मास लगा है तभी से ब्रजमण्डल में धूम मची हुई है। कोई भी स्त्री, नवेली वधू नहीं बची है जिसने प्रेम का विशेष प्रकार का रस न चखा हो। सुबह शाम आनन्द मगन होकर श्री कृष्ण रंग और गुलाल लेकर फाग खेलते रहते हैं। हे सखि इस माह में कौन सी सजनी है जिसने अपनी लज्जा और संकोच तथा मान नहीं त्यागा हो !

खेलत फाग लख्यौ पिय प्यारी को ता मुख की उपमा किहीं दीजै।
देखत ही बनि आवै भलै रसखन कहा है जौ बार न कीजै।।
ज्यों ज्यों छबीली कहै पिचकारी लै एक लई यह दूसरी लीजै।
त्यों त्यों छबीलो छकै छबि छाक सों हैरै हंसे न टरे खरो भीजै।।

एक गोपी अपनी सखि से फागलीला का वर्णन करती हुई कहती है कि ऐ सखि,मैं ने कृष्ण और उनकी प्रिया राधा को फाग खेलते हुये देखा। उस समय की जो शोभा थी उसे किसी की भी उपमा नहीं दी जा सकती। वह शोभा तो देखते बनती थी, कि उस पर कोई ऐसी वस्तु भी नहीं जिसे निछावर किया जा सके। ज्यों ज्यों राधा एक के बाद एक रंग भरी पिचकारी उनपर डालती थीं,

त्यों त्यों वे उनके रूप रस में सराबोर होकर मस्त हो रहे थे और हंस हंस कर वहां से भागे बिना खडे ख़डे भीग रहे थे।

बिहारी तो संयोग और वियोग निरुपण दोनों में सिध्दहस्त कवि हैं, संयोग हो या वियोग फागुन मास का विशेष महत्व है। प्रिय हैं तो होली मादक है और प्रिय नहीं हैं तो होली जैसा त्यौहार भी रंगहीन प्रतीत होता है। बसन्त ऋतु भी अच्छी नहीं लगती।

बन बाटनु पिक बटपरा, तकि बिरहिनु मत मैन।
कुहौ कुहौ कहि कहि उठे, करि करि राते नैन।।
हिय/ और सी हवे गई डरी अवधि के नाम।
दूजे करि डारी खरी, बौरी बौरे आम।।

बिहारी ने फागुन को साधन के रूप में लेकर संयोग निरुपण भी किया है। फागुन महीना आ जाने पर जब नायक नायिका के साथ होली खेलता है तो नायिका भी नायक के मुख पर गुलाल मल देती है या फिर पिचकारी से उसके शरीर को रंग में डुबो देती है।

जज्यौं उझकि झांपति बदनु, झुकति विहंसि सतराई।
तत्यौं गुलाब मुठी झुठि झझकावत प्यौ जाई।।
पीठि दियैं ही नैंक मुरि, कर घूंघट पटु डारि।
भरि गुलाल की मुठि सौं गई मुठि सी मारि।।

इस प्रकार हमारे प्राचीन कवियों ने फागुन मास और होली के रंग भरे त्योहार को अपने शब्दों में बडी सजीवता से प्रस्तुत किया है। होली का महत्व जो तब था, आज भी वही है। फागुन मास में बौराये आमों की तुर्श गंध और फूलते पलाश के पेडों के साथ तन मन आज भी बौरा जाता है। आज भी होली रूप रस गंध का त्यौहार है। होली उत्साह, उमंग और प्रेम पगी छेडछाड लेकर आती है। होली सारे अलगाव और कटुता और अपनी रंग भरी धाराओं से धो जाती है। इस रंगमय त्यौहार की महत्ता अक्षुण्ण है।

पद्माकर ने भी होली विषयक प्रचुर रचनाएँ की हैं। इस विषय के माध्यम से कवियों ने जहाँ एक ओर नितान्त लौकिक नायक नायिका के बीच खेली गई अनुराग और प्रीति की होली का वर्णन किया है, वहीं राधा कृष्ण के बीच खेली गई प्रेम और छेड़छाड़ से भरी होली के माध्यम से सगुण साकार भक्तिमय प्रेम और निर्गुण निराकार भक्तिमय प्रेम का निष्पादन कर डाला है।

सूफ़ी संत हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया, अमीर खुसरो और बहादुर शाह ज़फ़र जैसे मुस्लिम संप्रदाय का पालन करने वाले कवियों ने भी होली पर सुंदर रचनाएँ लिखी हैं जो आज भी जन सामान्य में लोकप्रिय हैं।

आधुनिक हिंदी कहानियों प्रेमचंद की राजा हरदोल, प्रभु जोशी की अलग अलग तीलियाँ, तेजेंद्र शर्मा की एक बार फिर होली, ओम प्रकाश अवस्थी की होली मंगलमय हो तथा स्वदेश राणा की हो ली में होली के अलग अलग रूप देखने को मिलते हैं। भारतीय फ़िल्मों में भी होली के दृश्यों और गीतों को सुंदरता के साथ चित्रित किया गया है। इस दृष्टि से शशि कपूर की उत्सव, यश चोपड़ा की सिलसिला, वी शांताराम की झनक झनक पायल बाजे और नवरंग इत्यादि उल्लेखनीय हैं। संस्कृत साहित्य में बसंत ऋतु और बसंतोत्सव अनेक कवियों के विषय रहे हैं ।महाकवि कालिदास द्वारा रचित 'ऋतुसंहार' में पूरा एक सर्ग ही 'बसंतोत्सव' को समर्पित है ! कालिदास के 'कुमारसंभव' और'मालविकाग्निमित्र' में 'रंग ' नाम के उत्सव का वर्णन है ! भारवि व माघ तथा अन्य संस्कृत के कवियों ने बसंत की बहुत ही अधिक चर्चा की है ! हिन्दी व संस्कृत साहित्य के साथ-साथ भारतीय शास्त्रीय संगीत,लोक गीत, और फ़िल्मी संगीत की परम्पराओं में भी होली का विशेष महत्त्व रहा है।

प्रह्लाद की कथा

होली के पर्व से अनेक कहानियाँ जुड़ी हुई हैं। इनमें से सबसे प्रसिद्ध कहानी है होलिका और प्रह्लाद की है। विष्णु पुराण की एक कथा के अनुसार प्रह्लाद के पिता दैत्यराज हिरण्यकश्यप ने तपस्या कर देवताओं से यह वरदान प्राप्त कर लिया कि वह न

तो पृथ्वी पर मरेगा न आकाश में, न दिन में मरेगा न रात में, न घर में मरेगा न बाहर, न अस्त्र से मरेगा न शस्त्र से, न मानव से मारेगा न पशु से। इस वरदान को प्राप्त करने के बाद वह स्वयं को अमर समझ कर नास्तिक और निरंकुश हो गया। उसने अपनी प्रजा को यह आदेश दिया कि कोई भी व्यक्ति ईश्वर की वंदना न करे। अहंकार में आकर उसने जनता पर जुल्म करने आरम्भ कर दिए। यहाँ तक कि उसने लोगो को परमात्मा की जगह अपना नाम जपने का हुकम दे दिया।

कुछ समय बाद हिरण्यकश्यप के घर में एक बेटे का जन्म हुआ। उसका नाम प्रह्लाद रखा गया। प्रह्लाद कुछ बड़ा हुआ तो, उसको पाठशाला में पढने के लिए भेजा गया। पाठशाला के गुरु ने प्रह्लाद को हिरण्यकश्यप का नाम जपने की शिक्षा दी। पर प्रह्लाद हिरण्यकश्यप के स्थान पर भगवान विष्णु का नाम जपता था। वह भगवान विष्णु को हिरण्यकश्यप से बड़ा समझता था।

गुरु ने प्रह्लाद की हिरण्यकश्यप से शिकायत कर दी। हिरण्यकश्यप ने प्रह्लाद को बुला कर पूछा कि वह उसका नाम जपने के जगह पर विष्णु का नाम क्यों जपता है। प्रह्लाद ने उत्तर दिया, 'ईश्वर सर्व शक्तिमान है, उसने ही सारी सृष्टि को रचा है।' अपने पुत्र का उत्तर सुनकर हिरण्यकश्यप को गुस्सा आ गया। उसको खतरा पैदा हो गया कि कही बाकि जनता भी प्रह्लाद की बात ना मानने लगे। उसने आदेश दिया कहा, 'मैं ही सबसे अधिक शक्तिशाली हूं, मुझे कोई नहीं मर सकता। मैं तुझे अब खत्म कर सकता हूँ।' उसकी आवाज सुनकर प्रह्लाद की माता भी वहां आ गई। उसने हिरण्यकश्यप का विनती करते हुए कहा, 'आप इसको ना मारो, मैं इसे समझाने का यतन करती हूं।' वे प्रह्लाद को अपने पास बिठाकर कहने लगी, 'तेरे पिता जी इस धरती पर सबसे शक्तिशाली है। उनको अमर रहने का वर मिला हुआ है। इनकी बात मान ले। 'प्रहलद बोला, 'माता जी मैं मानता हूं कि मेरे पिता जी बहुत ताकतवर है पर सबसे अधिक बलवान भगवान विष्णु हैं जिसने हम सभी को बनाया है। पिता जो को भी उसने ही बनाया है। प्रह्लाद का ये उत्तर सुन कर उसकी मां बेबस हो गयी। प्रहलद अपने विश्वास पर आडिग था। ये देख हिरण्यकश्यप को और गुस्सा आ गया। उसने अपने सिपाहियों को हुकम दिया कि वो प्रह्लाद को सागर में डूबा कर मार दें। सिपाही प्रह्लाद को सागर में फेंकने के लिए ले गये और पहाड़ से सागर में फैंक दिया। लेकिन भगवान के चमत्कार से सागर की एक लहर ने प्रह्लाद को किनारे पर फैंक दिया। सिपाहियों ने प्रह्लाद को फिर सागर में फेंका। प्रह्लाद फिर बहार आ गया। सिपाहियों ने आकर हिरण्यकश्यप को बताया। फिर हिरण्यकश्यप बोला उसको किसी ऊंचे पर्वत से नीचे फेंक कर मार दो। सिपाहियों ने प्रह्लाद को जैसे ही पर्वत से फेंका प्रह्लाद एक घने वृक्ष पर गिरा जिस कारण उसको कोई चोट नहीं लगी। हिरण्यकश्यप ने प्रहलाद को एक पागल हाथी के आगे फैंका तो जो हाथी उसको अपने पैरों के नीचे कुचल दे। पर हाथी ने प्रह्लाद को कुछ नहीं कहा। लगता था जैसे सारी कुदरत प्रह्लाद की मदद कर रही हो।

हिरण्यकश्यप की एक बहन थी जिसका नाम होलिका था। होलिका अपने भाई हिरण्यकश्यप की परेशानी दूर करना चाहती थी। होलिका को वरदान था कि उसको आग जला नहीं सकती। उसने अपने भाई को कहा कि वो प्रह्लाद को अपनी गोद में लेकर बैठ जाएगी। वरदान के कारण वो खुद आग में जलने से बच जाएगी पर प्रह्लाद जल जायेगा। लेकिन हुआ इसका उलट और आग में होलिका जल गयी पर प्रह्लाद बच गया। होलिका ने जब वरदान में मिली शक्ति का दुरूपयोग किया, तो वो वरदान उसके लिए श्राप बन गया।

बिहार में जली थी होलिका

महान पर्व होली के एक दिन पूर्व होलिका दहन होता है। होलिका दहन बुराई पर अच्छाई की जीत को दर्शाता है, परंतु यह बहुत कम लोगों को मालूम होगा कि हिरण्यकश्यप की बहन होलिका का दहन बिहार की धरती पर हुआ था। जनश्रुति के मुताबिक तभी से प्रतिवर्ष होलिका दहन की परंपरा की शुरुआत हुई।

मान्यता है कि बिहार के पूर्णिया जिले के बनमनखी प्रखंड के सिकलीगढ़ में ही वह जगह है, जहां होलिका भगवान विष्णु के परम भक्त प्रह्लाद को अपनी गोद में लेकर दहकती आग के बीच बैठी थी। इसी दौरान भगवान नरसिंह का अवतार हुआ था, जिन्होंने हिरण्यकश्यप का वध किया था। पौराणिक कथाओं के अनुसार, सिकलीगढ़ में हिरण्यकश्य का किला था।

यहीं भक्त प्रह्लाद की रक्षा के लिए एक खंभे से भगवान नरसिंह अवतार लिए थे। भगवान नरसिंह के अवतार से जुड़ा खंभा (माणिक्य स्तंभ) आज भी यहां मौजूद है।

कहा जाता है कि इसे कई बार तोड़ने का प्रयास किया गया। यह स्तंभ झुक तो गया, पर टूटा नहीं। पूर्णिया जिला मुख्यालय से करीब 40 किलोमीटर दूर सिकलीगढ़ के बुजुर्गो का कहना है कि प्राचीन काल में 400 एकड़ के दायरे में कई टीले थे, जो

अब 100 एकड़ में सिमटकर रह गए हैं। पिछले दिनों इन टीलों की खुदाई में कई पुरातन वस्तुएं निकली थीं।

धार्मिक पत्रिका 'कल्याण' के 31वें वर्ष के विशेषांक में भी सिकलीगढ़ का खास उल्लेख करते हुए इसे नरसिंह भगवान अवतार स्थल बताया गया था।

बनमनखी अनुमंडल के पूर्व अनुमंडल पदाधिकारी केशवर सिंह ने आईएएनएस को बताया कि इस जगह प्रमाणिकता के लिए कई साक्ष्य है। उन्होंने कहा कि यहीं हिरन नामक नदी बहती है। वे बताते हैं कि कुछ वर्षो पहले तक नरसिंह स्तंभ में एक सुराख हुआ करता था, जिसमें पत्थर डालने से वह हिरन नदी में पहुंच जाता था। इसी भूखंड पर भीमेश्वर महादेव का विशाल मंदिर है।

मान्यताओं के मुताबिक हिरण्यकश्यप का भाई हिरण्याक्ष बराह क्षेत्र का राजा था जो अब नेपाल में पड़ता है।

प्रह्लाद स्तंभ की सेवा के लिए बनाए गए प्रह्लाद स्तंभ विकास ट्रस्ट के अध्यक्ष बद्री प्रसाद साह बताते हैं कि यहां साधुओं का जमावड़ा शुरू से रहा है। वे कहते हैं कि भागवत पुराण (सप्तम स्कंध के अष्टम अध्याय) में भी माणिक्य स्तंभ स्थल का जिक्र है। उसमें कहा गया है कि इसी खंभे से भगवान विष्णु ने नरसिंह अवतार लेकर अपने भक्त प्रह्लाद की रक्षा की थी।

इस स्थल की एक खास विशेषता है कि यहां राख और मिट्टी से होली खेली जाती है। ग्रामीण मनोहर कुमार बताते हैं कि मान्यताओं के मुताबिक जब होलिका भस्म हो गई थी और प्रह्लाद चिता से सकुशल वापस आ गए थे, तब प्रहलाद के समर्थकों ने खुशी में राख और मिट्टी एक-दूसरे को लगाकर खुशी मनाई थी। तभी से ऐसी होली शुरू हुई।

वे कहते हैं कि यहां होलिका दहन के दिन पूरे जिले के अलावा 40 से 50 हजार श्रद्धालु होलिका दहन के समय उपस्थित होते हैं और जमकर राख और मिट्टी से होली खेलते हैं। यही कारण है कि इस इलाके में आज भी राख और मिट्टी से होली खेलने की परंपरा है।

होली की परंपराएँ

होली के पर्व की तरह इसकी परंपराएँ भी अत्यंत प्राचीन हैं, और इसका स्वरूप और उद्देश्य समय के साथ बदलता रहा है। प्राचीन काल में यह विवाहित महिलाओं द्वारा परिवार की सुख समृद्धि के लिए मनाया जाता था और पूर्ण चंद्र की पूजा करने की परंपरा थी।

वैदिक काल में इस पर्व को नवात्रैष्टि यज्ञ कहा जाता था। उस समय खेत के अधपके अन्न को यज्ञ में दान करके प्रसाद लेने का विधान समाज में व्याप्त था। अन्न को होला कहते हैं, इसी से इसका नाम होलिकोत्सव पड़ा।

भारतीय ज्योतिष के अनुसार चैत्र शुदी प्रतिपदा के दिन से नववर्ष का भी आरंभ माना जाता है। इस उत्सव के बाद ही चैत्र महीने का आरंभ होता है। अतः यह पर्व नवसंवत का आरंभ तथा वसंतागमन का प्रतीक भी है। इसी दिन प्रथम पुरुष मनु का जन्म हुआ था, इस कारण इसे मन्वादितिथि कहते हैं।

होली का पहला काम झंडा या डंडा गाड़ना होता है। इसे किसी सार्वजनिक स्थल या घर के आहाते में गाड़ा जाता है। इसके पास ही होलिका की अग्नि इकट्ठी की जाती है। होली से काफ़ी दिन पहले से ही यह सब तैयारियाँ शुरू हो जाती हैं। पर्व का पहला दिन होलिका दहन का दिन कहलाता है। इस दिन चौराहों पर व जहाँ कहीं अग्नि के लिए लकड़ी एकत्र की गई होती है, वहाँ होली जलाई जाती है।

होलिका दहन की परंपरा

शास्त्रों के अनुसार होली उत्सव मनाने से एक दिन पहले आग जलाते हैं और पूजा करते हैं। इस अग्नि को बुराई पर अच्छाई की विजय का प्रतीक माना जाता है। होलिका दहन का एक और महत्व है, माना जाता है कि भुना हुआ धान्य या अनाज को संस्कृत में होलका कहते हैं, और कहा जाता है कि होली या होलिका शब्द, होलका यानी अनाज से लिया गया है। इन अनाज से हवन किया जाता है, फिर इसी अग्नि की राख को लोग अपने माथे पर लगाते हैं जिससे उन पर कोई बुरा साया ना पड़े। इस राख को भूमि हरि के रूप से भी जाना ता है।

होलिका दहन का महत्व

होलिका दहन की तैयारी त्योहार से 40 दिन पहले शुरू हो जाती हैं। जिसमें लोग सूखी टहनियाँ, सूखे पत्ते इकट्ठा करते हैं। फिर फाल्गुन पूर्णिमा की संध्या को अग्नि जलाई जाती है और रक्षोगण के मंत्रो का उच्चारण किया जाता है। दूसरे दिन सुबह नहाने से पहले इस अग्नि की राख को अपने शरीर लगाते हैं, फिर स्नान करते हैं। होलिका दहन का महत्व है कि आपकी मजबूत इच्छाशक्ति आपको सारी बुराईयों से बचा सकती है, जैसे प्रह्लाद की थी। कहा जाता है कि बुराई कितनी भी ताकतवर क्यों ना हो

जीत हमेशा अच्छाई की ही होती है। इसी लिए आज भी होली के त्यौहार पर होलिका दहन एक महत्वपूर्ण हिस्सा है।

देश के अलग-अलग राज्यों में कैसे मनाया जाता है होली का त्यौहार -

भारत में होली का उत्सव अलग-अलग प्रदेशों में भिन्नता के साथ मनाया जाता है। ब्रज की होली आज भी सारे देश के आकर्षण का बिंदु होती है। बरसाने की लठमार होली काफ़ी प्रसिद्ध है। इसमें पुरुष महिलाओं पर रंग डालते हैं और महिलाएँ उन्हें लाठियों तथा कपड़े के बनाए गए कोड़ों से मारती हैं। इसी प्रकार मथुरा और वृंदावन में भी 50 दिनों तक होली का पर्व मनाया जाता है।

कुमाऊँ की गीत बैठकी में शास्त्रीय संगीत की गोष्ठियाँ होती हैं। यह सब होली के कई दिनों पहले शुरू हो जाता है। हरियाणा की धुलंडी में भाभी द्वारा देवर को सताए जाने की प्रथा है। बंगाल की दोल जात्रा चैतन्य महाप्रभु के जन्मदिन के रूप में मनाई जाती है। जलूस निकलते हैं और गाना बजाना भी साथ रहता है। महाराष्ट्र की रंग पंचमी में सूखा गुलाल खेलने, गोवा के शिमगो में जलूस निकालने के बाद सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन पंजाब के होला मोहल्ला में सिक्खों द्वारा शक्ति प्रदर्शन की परंपरा है। तमिलनाडु की कमन पोडिगई मुख्य रूप से कामदेव की कथा पर आधारित वसंतोतसव है मणिपुर के याओसांग में योंगसांग उस नन्हीं झोंपड़ी का नाम है जो पूर्णिमा के दिन प्रत्येक नगर-ग्राम में नदी अथवा सरोवर के तट पर बनाई जाती है। दक्षिण गुजरात के आदिवासियों के लिए होली सबसे बड़ा पर्व है, छत्तीसगढ़ की होरी में लोक गीतों की अद्भुत परंपरा है। मध्यप्रदेश के मालवा अंचल के आदिवासी इलाकों में बेहद धूमधाम से मनाया जाता है भगोरिया, जो होली का ही एक रूप है। बिहार का फगुआ जम कर मौज मस्ती करने का पर्व है। नेपाल की होली में इस पर धार्मिक व सांस्कृतिक रंग दिखाई देता है। इसी प्रकार विभिन्न देशों में बसे प्रवासियों तथा धार्मिक संस्थाओं जैसे इस्कॉन या वृंदावन के बांके बिहारी मंदिर में अलग अलग प्रकार से होली के श्रृंगार व उत्सव मनाने की परंपरा है जिसमें अनेक समानताएँ और भिन्नताएँ हैं।

कुमाऊँ की बैठक होली

उत्तरांचल के कुमाऊं मंडल की सरोवर नगरी नैनीताल और अल्मोड़ा जिले में तो नियत तिथि से काफी पहले ही होली की मस्ती और रंग छाने लगते हैं। इस रंग में सिर्फ अबीर गुलाल का टीका ही नहीं होता बल्कि बैठकी होली और खड़ी होली गायन की शास्त्रीय परंपरा भी शामिल होती है। बरसाने की होली के बाद अपनी सांस्कृतिक विशेषता के लिए कुमाऊंनी होली को याद किया जाता है। फूलों के रंगों और संगीत की तानों का ये अनोखा संगम देखने लायक होता है। शाम ढलते ही कुमाऊं के घर घर में बैठक होली की सुरीली महफिलें जमने लगती है। बैठक होली घर की बैठक में राग रागनियों के इर्द गिर्द हारमोनियम तबले पर गाई जाती है।

'रंग डारी दियो हो अलबेलिन में
गए रामाचंद्रन रंग लेने को गए
गए लछमन रंग लेने को गए
रंग डारी दियो हो सीतादेहिमें
रंग डारी दियो हो बहुरानिन में।'

इसकी शुरूआत यहां कब और कैसे हुई इसका कोई ऐतिहासिक या लिखित लेखाजोखा नहीं है। कुमाऊं के प्रसिद्द जनकवि गिरीश गिर्दा ने बैठ होली के सामाजिक शास्त्रीय संदर्भों और इस पर इस्लामी संस्कृति और उर्दू के असर के बारे में गहराई से अध्ययन किया है।वो कहते हैं कि 'यहां की होली में अवध से लेकर दरभंगा तक की छाप है। राजे-रजवाड़ों का संदर्भ देखें तो जो राजकुमारियां यहां ब्याह कर आईं वे अपने साथ वहां के रीति रिवाज भी साथ लाईं। ये परंपरा वहां भले ही खत्म हो गई हो लेकिन यहां आज भी कायम हैं। यहां की बैठकी होली में तो आज़ादी के आंदोलन से लेकर उत्तराखंड आंदोलन तक के संदर्भ भरे पड़े हैं ।'

बंगाल का 'दोल उत्सव'

कहा जाता है कि बंगाल जो आज सोचता है, वो बाक़ी देश कल सोचता है। कम से कम एक त्यौहार होली के मामले में भी यही कहावत चरितार्थ होती है।

यहाँ देश के बाक़ी हिस्सों के मुक़ाबले, एक दिन पहले ही होली मना ली जाती है। राज्य में इस त्यौहार को'दोल उत्सव' के नाम से जाना जाता है। इस दिन महिलाएँ लाल किनारी वाली सफ़ेद साड़ी पहन कर शंख बजाते हुए राधा-कृष्ण की पूजा करती हैं और प्रभात-फेरी (सुबह निकलने वाला जुलूस) का आयोजन करती हैं। इसमें गाजे-बाजे के साथ, कीर्तन और गीत गाए जाते हैं। दोल शब्द का मतलब झूला होता है। झूले पर राधा-कृष्ण की मूर्ति रख कर महिलाएँ भक्ति गीत गाती हैं और उनकी पूजा करती हैं। इस दिन अबीर और रंगों से होली खेली जाती है,

हालांकि समय के साथ यहाँ होली मनाने का तरीक़ा भी बदला है। वरिष्ठ पत्रकार तपस मुखर्जी कहते हैं कि अब पहले जैसी बात नहीं रही। पहले यह दोल उत्सव एक सप्ताह तक चलता था। इस मौक़े पर ज़मीदारों की हवेलियों के सिंहद्वार आम लोगों के लिए खोल दिये जाते थे। उन हवेलियों में राधा-कृष्ण का मंदिर होता था। वहाँ पूजा-अर्चना और भोज चलता रहता था। देश के बाक़ी हिस्सों की तरह, कोलकाता में भी दोल उत्सव के दिन नाना प्रकार के पकवान बनते हैं। इनमें पारंपरिक मिठाई संदेश और रसगुल्ला के अलावा, नारियल से बनी चीज़ों की प्रधानता होती है। मुखर्जी बताते हैं कि अब एकल परिवारों की तादाद बढ़ने से होली का स्वरूप कुछ बदला ज़रूर है, लेकिन इस दोल उत्सव में अब भी वही मिठास है, जिससे मन (झूले में) डोलने लगता है। कोलकाता की सबसे बड़ी ख़ासियत यह है कि यहाँ मिली-जुली आबादी वाले इलाक़ों में मुसलमान और ईसाई तबके के लोग भी हिंदुओं के साथ होली खेलते हैं। वे राधा-कृष्ण की पूजा से भले दूर रहते हों, रंग और अबीर लगवाने में उनको कोई दिक्क़त नहीं होती।कोलकाता का यही चरित्र यहाँ की होली को सही मायने में सांप्रदायिक सदभाव का उत्सव बनाता है।

महाराष्ट्र की रंग पंचमी और कोंकण का शिमगो

महाराष्ट्र और कोंकण के लगभग सभी हिस्सों मे इस त्योहार को रंगों के त्योहार के रुप मे मनाया जाता है। मछुआरों की बस्ती मे इस त्योहार का मतलब नाच,गाना और मस्ती होता है। ये मौसम रिशते(शादी) तय करने के लिये मुआफिक होता है, क्योंकि सारे मछुआरे इस त्योहार पर एक दूसरे के घरों को मिलने जाते है और काफी समय मस्ती मे व्यतीत करते हैं। महाराष्ट्र में होली के बाद पंचमी के दिन रंग खेलने की परंपरा है। यह रंग सामान्य रूप से सूखा गुलाल होता है। विशेष भोजन बनाया जाता है जिसमे पूरनपोली अवश्य होती है। मछुआरों की बस्ती मे इस त्योहार का मतलब नाच,गाना और मस्ती होता है। ये मौसम रिशते(शादी) तय करने के लिये मुआफिक होता है, क्योंकि सारे मछुआरे इस त्योहार पर एक दूसरे के घरों को मिलने जाते है और काफी समय मस्ती मे व्यतीत करते हैं। राजस्थान में इस अवसर पर विशेष रूप से जैसलमेर के मंदिर महल में लोकनृत्यों में डूबा वातावरण देखते ही बनता है जब कि हवा में लाला नारंगी और फ़िरोज़ी रंग उड़ाए जाते हैं। मध्यप्रदेश के नगर इंदौर में इस दिन सड़कों पर रंग मिश्रित सुगंधित जल छिड़का जाता है। लगभग पूरे मालवा प्रदेश में होली पर जलूस निकालने की परंपरा है। जिसे गेर कहते हैं। जलूस में बैंड-बाजे-नाच-गाने सब शामिल होते हैं। नगर निगम के फ़ायर फ़ाइटरों में रंगीन पानी भर कर जुलूस के तमाम रास्ते भर लोगों पर रंग डाला जाता है। जुलूस में हर धर्म के, हर राजनीतिक पार्टी के लोग शामिल होते हैं, प्रायः महापौर (मेयर) ही जुलूस का नेतृत्व करता है। प्राचीनकाल में जब होली का पर्व कई दिनों तक मनाया जाता था तब रंगपंचमी होली का अंतिम दिन होता था और उसके बाद कोई रंग नहीं खेलता था।

पंजाब का होला मोहल्ला

पंजाब मे भी इस त्योहार की बहुत धूम रहती है। सिक्खों के पवित्र धर्मस्थान श्री अनन्दपुर साहिब मे होली के अगले दिन से लगने वाले मेले को होला मोहल्ला कहते है। सिखों के लिये यह धर्मस्थान बहुत ही महत्वपूर्ण है।कहते है गुरु गोबिन्द सिंह (सिक्खों के दसवें गुरु) ने स्वयं इस मेले की शुरुआत की थी।तीन दिन तक चलने वाले इस मेले में सिख शौर्यता के हथियारों का प्रदर्शन और वीरत के करतब दिखाए जाते हैं। इस दिन यहाँ पर अनन्दपुर साहिब की सजावट की जाती है और विशाल लंगर का आयोजन किया जाता है।कभी आपको मौका मिले तो देखियेगा जरुर। सिक्खों के पवित्र धर्मस्थान श्री अनन्दपुर साहिब मे होली के अगले दिन से लगने वाले मेले को होला मोहल्ला कहते है। सिखों के लिये यह धर्मस्थान बहुत ही महत्वपूर्ण है। यहाँ पर होली पौरुष के प्रतीक पर्व के रूप में मनाई जाती है। इसीलिए दशम गुरू गोविंद सिंह जी ने होली के लिए पुल्लिंग शब्द होला मोहल्ला का प्रयोग किया। गुरु जी इसके माध्यम से समाज के दुर्बल और शोषित वर्ग की प्रगति चाहते थे। होला महल्ला का उत्सव आनंदपुर साहिब में छः दिन तक चलता है। इस अवसर पर, भांग की तरंग में मस्त घोड़ों पर सवार निहंग, हाथ में निशान साहब उठाए तलवारों के करतब दिखा कर साहस, पौरुष और उल्लास का प्रदर्शन करते हैं। जुलूस तीन काले बकरों की बलि से प्रारंभ होता है। एक ही झटके से बकरे की गर्दन धड़ से अलग करके उसके मांस से 'महा प्रसाद' पका कर वितरित किया जाता है। पंज पियारे जुलूस का नेतृत्व करते हुए रंगों की बरसात करते हैं और जुलूस में निहंगों के अखाड़े नंगी तलवारों के करतब दिखते हुए बोले सो निहाल के नारे बुलंद करते हैं। अनन्दपुर साहिब की सजावट की जाती है और विशाल लंगर का आयोजन किया जाता है। कहते है गुरु गोबिन्द सिंह(सिक्खों के दसवें गुरु) ने स्वयं इस मेले की शुरुआत की थी। यह जुलूस हिमाचल प्रदेश की सीमा पर बहती एक छोटी नदी चरण गंगा के तट पर समाप्त होता है।

तमिलनाडु की कामन पोडिगई

तमिलनाडु में होली का दिन कामदेव को समर्पित होता है। इसके पीछे भी एक किवदन्ती है। प्राचीन काल मे देवी सती (भगवान शंकर की पत्नी) की मृत्यू के बाद शिव काफी क्रोधित और व्यथित हो गये थे।इसके साथ ही वे ध्यान मुद्रा मे प्रवेश कर गये थे।उधर पर्वत सम्राट की पुत्री भी शंकर भगवान से विवाह करने के लिये तपस्या कर रही थी। देवताओ ने भगवान शंकर की निद्रा को तोड़ने के लिये कामदेव का सहारा लिया।कामदेव ने अपने कामबाण के शंकर पर वार किया।भगवन ने गुस्से मे अपनी तपस्या को बीच मे छोड़कर कामदेव को देखा। शंकर भगवान को बहुत गुस्सा आया कि कामदेव ने उनकी तपस्या मे विध्न डाला है इसलिये उन्होने अपने त्रिनेत्र से कामदेव को भस्म कर दिया। अब कामदेव का तीर तो अपना काम कर ही चुका था, सो पार्वती को शंकर भगवान पति के रुप मे प्राप्त हुए। उधर कामदेव की पत्नी रति ने विलाप किया और शंकर भगवान से कामदेव को जीवित करने की गुहार की। ईश्वर प्रसन्न हुए और उन्होने कामदेव को पुनर्जीवित कर दिया। यह दिन होली का दिन होता है। आज भी रति के विलाप को लोक संगीत के रुप मे गाया जाता है और चंदन की लकड़ी को अग्निदान किया जाता है ताकि कामदेव को भस्म होने मे पीड़ा ना हो। साथ ही बाद मे कामदेव के जीवित होने की खुशी मे रंगो का त्योहार मनाया जाता है।

राजस्थान की होली

होली के विभिन्न रूप देखने को मिलते हैं। बाड़मेर में पत्थर मार होली खेली जाती है तो अजमेर में कोड़ा होली। सलंबर कस्बे में आदिवासी गेर खेलकर होली मनाते हैं। इस दिन यहां के युवक हाथ में एक बांस जिस पर घूंघरू और रूमाल बंधा होता है, जिसे गेली कहा जाता है लेकर नृत्य करते हैं। इस दिन युवतियां फाग के गीत गाती हैं।

मध्यप्रदेश में भगौरिया

भील होली को भगौरिया कहते हैं। इस दिन युवक मांदल की थाप पर नृत्य करते हैं। नृत्य करते-करते जब युवक किसी युवती के मुंह पर गुलाल लगाता है और बदले में वह भी यदि गुलाल लगा देती है तो मान लिया जाता है कि दोनों विवाह के लिए सहमत हैं। यदि वह प्रत्युत्तर नहीं देती तो वह किसी और की तलाश में जुट जाता है।

मालवा की होली- होली के दिन लोग एक-दूसरे पर अंगारे फेंकते हैं। कहते हैं कि इससे होलिका राक्षसी का अंत हो जाता है।

गुजरात में गोलगधेड़ों

भील जाति के लोग होली को गोलगधेड़ों के नाम से मनाते हैं। इसमें किसी बांस या पेड़ पर नारियल और गुड़ बांध दिया जाता है उसके चारों और युवतियां घेरा बनाकर नाचती हैं। युवक को इस घेरे को तोड़कर गुड़, नारियल प्राप्त करना होता है। इस प्रक्रिया में युवतियां उस पर जबरदस्त प्रहार करती हैं। यदि वह इसमें कामयाब हो जाता है तो जिस युवती पर वह गुलाल लगाता है वह उससे विवाह करने के लिए बाध्य हो जाती है।

बस्तर का कामुनी पेडम

इस दिन लोग कामदेव का बुत सजाते हैं, जिसे कामुनी पेडम कहा जाता है। उस बुत के साथ एक कन्या का विवाह किया जाता है। इसके उपरांत कन्या की चुड़ियां तोड़कर, सिंदूर पौंछकर विधवा का प दिया जाता है। बाद में एक चिता जलाकर उसमें खोपरे भुनकर प्रसाद बांटा जाता है।

मणिपुर में याओसांग

होली याओसांग के नाम से मनाई जाती है। यहां धुलेंडी वाले दिन को पिचकारी कहा जाता है। याओसांग का मतलब नन्हीं सी झोपड़ी जो नदी के तट पर बनाई जाती है। इस दिन इसमें चैतन्य महाप्रभु की प्रतिमा स्थापित की जाती है और पूजन के बाद इस झोपड़ी को अलाव की भांति जला दिया जाता है। इस झोपड़ी में लगने वाली सामग्री को बच्चों द्वारा चुराकर लाने की प्रथा है। इसकी राख को लोग मस्तक पर लगाते हैं एवं ताबीज भी बनाया जाता है। पिचकारी के दिन सभी एक-दूसरे को रंग लगाते हैं। बच्चे घर-घर जाकर चांवल, सब्जी इत्यादि इकट्ठा करते हैं और फिर विशाल भोज का आयोजन किया जाता है।

ब्रज (मथुरा, वृंदावन, बरसाना, नंदगांव, गोवर्धन) की प्रसिद्ध होली

बरसाने की प्रसिद्ध लट्ठमार होली

होली शुरू होते ही सबसे पहले ब्रज रंगों में डूबता है।

यहाँ भी सबसे ज्यादा मशहूर है बरसाना की लट्ठमार होली। बरसाना राधा का जन्मस्थान है।

मथुरा (उत्तर प्रदेश) के पास बरसाना में होली कुछ दिनों पहले ही शुरू हो जाती है। लट्ठमार होली में शामिल होने के लिए

देश विदेश से लाखों लोग यहां पहुंचते हैं। होली के समय वहां का माहौल ही अलग और अद्भुत होता है। होली के कुछ दिनों पहले लट्ठमार होली खेली जाती है। कहा जाता है कि कृष्ण और उनके दोस्त राधा और उनकी सहेलियों को तंग करते थे जिसपर उन्हें मार पड़ती थी।इस दौरान ढोल की थापों के बीच महिलाएं पुरुषों को लाठियों से पीटती हैं। हजारों की संख्या में लोग उनपर रंग फेंकते हैं।

'बरसाने में आई जइयो बुलाए गई राधा प्यारी' इस गीत के साथ ही ब्रज की होली की मस्ती शुरू होती है। वैसे तो होली पूरे भारत में मनाई जाती है लेकिन ब्रज की होली ख़ास मस्ती भरी होती है। वजह ये कि इसे कृष्ण और राधा के प्रेम से जोड़ कर देखा जाता है। होता ये है कि होली की टोलियों में नंदगाँव के पुरूष होते हैं क्योंकि कृष्ण यहीं के थे और बरसाने की महिलाएं क्योंकि राधा बरसाने की थीं। दिलचस्प बात ये होती है कि ये होली बाकी भारत में खेली जाने वाली होली से पहले खेली जाती है। दिन शुरू होते ही नंदगाँव के हुरियारों की टोलियाँ बरसाने पहुँचने लगती हैं। साथ ही पहुँचने लगती हैं कीर्तन मंडलियाँ। इस दौरान भाँग-ठंढई का ख़ूब इंतज़ाम होता है। ब्रजवासी लोगों की चिरौंटा जैसी आखों को देखकर भाँग ठंढई की व्यवस्था का अंदाज़ लगा लेते हैं। बरसाने में टेसू के फूलों के भगोने तैयार रहते हैं। दोपहर तक घमासान लठमार होली का समाँ बंध चुका होता है।

मान्यता

इस दिन लट्ठ महिलाओं के हाथ में रहता है और नन्दगाँव के पुरुषों (गोप) जो राधा के मन्दिर 'लाडलीजी' पर झंडा फहराने की कोशिश करते हैं, उन्हें महिलाओं के लट्ठ से बचना होता है।

इस दिन सभी महिलाओं में राधा की आत्मा बसती है और पुरुष भी हँस-हँस कर लाठियाँ खाते हैं। आपसी वार्तालाप के लिए 'होरी' गाई जाती है, जो श्रीकृष्ण और राधा के बीच वार्तालाप पर आधारित होती है।

महिलाएँ पुरुषों को लट्ठ मारती हैं, लेकिन गोपों को किसी भी तरह का प्रतिरोध करने की इजाजत नहीं होती है। उन्हें सिर्फ गुलाल छिड़क कर इन महिलाओं को चकमा देना होता है।

अगर वे पकड़े जाते हैं तो उनकी जमकर पिटाई होती है या महिलाओं के कपड़े पहनाकर, श्रृंगार इत्यादि करके उन्हें नचाया जाता है। माना जाता है कि पौराणिक काल में श्रीकृष्ण को बरसाना की गोपियों ने नचाया था। दो सप्ताह तक चलने वाली इस होली का माहौल बहुत मस्ती भरा होता है। एक बात और यहाँ पर जिस रंग-गुलाल का प्रयोग किया जाता है वो प्राकृतिक होता है, जिससे माहौल बहुत ही सुगन्धित रहता है। अगले दिन यही प्रक्रिया दोहराई जाती है, लेकिन इस बार नन्दगाँव में, वहाँ की गोपियाँ, बरसाना के गोपों की जमकर धुलाई करती है।

परंपरा एवं महत्त्व

उत्तर प्रदेश में वृन्दावन और मथुरा की होली का अपना ही महत्त्व है। इस त्योहार को किसानों द्वारा फसल काटने के उत्सव एक रूप में भी मनाया जाता है। गेहूँ की बालियों को आग में रख कर भूना जाता है और फिर उसे खाते है। होली की अग्नि जलने के पश्चात बची राख को रोग प्रतिरोधक भी माना जाता है। इन सब के अलावा उत्तर प्रदेश के मथुरा, वृन्दावन क्षेत्रों की होली तो विश्वप्रसिद्ध है। इसके अलावा एक और उल्लास भरी होली होती है, वो है वृन्दावन की होली यहाँ बाँके बिहारी मंदिर की होली और 'गुलाल कुंद की होली' बहुत महत्त्वपूर्ण है। वृन्दावन की होली में पूरा समां प्यार की ख़ुशी से सुगन्धित हो उठता है क्योंकि ऐसी मान्यता है कि होली पर रंग खेलने की परंपरा राधाजी व कृष्ण जी द्वारा ही शुरू की गई थी।

मुक़ाबला

नंदगाँव के लोगों के हाथ में पिचकारियाँ होती हैं और बरसाने की महिलाओं के हाथ में लाठियाँ। और शुरू हो जाती है होली। पुरूषों को बरसाने वालियों की टोली की लाठियों से बचना होता है और नंदगाँव के हुरियारे लाठियों की मार से बचने के साथ साथ उन्हें रंगों से भिगोने का पूरा प्रयास करते हैं। इस दौरान होरियों का गायन भी साथ-साथ चलता रहता है। आसपास की कीर्तन मंडलियाँ वहाँ जमा हो जाती हैं। इसे एक धार्मिक परंपरा के रूप में देखा जाता है। 'कान्हा बरसाने में आई जइयो बुलाए गई राधा प्यारी' 'फाग खेलन आए हैं नटवर नंद किशोर' और 'उड़त गुलाल लाल भए बदरा' जैसे गीतों की मस्ती से पूरा माहौल झूम उठता है। लोग मृदंग और ढोल ताशों की थाप पर थिरकने लगते हैं। कहा जाता है कि 'सब जग होरी, जा ब्रज होरा'इसका आशय यही है कि ब्रज की होली और जगहों से बिल्कुल अलग होती है

50 दिन की होली: रसीली-रंगीली ब्रज की होली

ब्रज और होली एक दूसरे के पर्याय है। होली की चर्चा होते ही ब्रज और ब्रज की चर्चा होते ही होली की स्मृतियां साकार हो उठती है। रसराज श्रीकृष्ण और रस-साम्राज्ञी राधिका द्वारा प्रेम-

प्रतीति पूर्ण होली ब्रज में खेली गई थी और इसीलिए ब्रज की होली में रंग के साथ रस की वृष्टि भी होती है। राधा-कृष्ण की लीला भूमि ब्रज की होली में मनुहार, माधुर्य और मादकता का अद्भुत संगम है। श्रीकृष्ण द्वारा राधा से होली खेलने की मनुहार, राधा की पिचकारियों से बरसे रंग की फुहार और ब्रज के गोप-गोपिकाओं के परस्पर प्रेम में सने मधुर बोलों की भावभीनी स्मृतियां आज भी ब्रज के कण-कण में व्याप्त है। आकाश में उड़ते अबीर-गुलाल और पिचकारियों से बरसते रंग के मध्य कृष्ण की बांसुरी तथा राधिका के नूपुरों की रुनझुन-रुनझुन से ब्रज रसमय है, रंगमय है।

होली-पर्व की सांस्कृतिक परम्परा में अनुपम-अद्भुत है ब्रज की होली। ब्रज की होली विशिष्ट है, विलक्षण है। देश के अन्य भागों में होली होती है एक-दो दिन की किंतु ब्रज में होली होती है 50 दिनों की। ब्रज में बसंत पंचमी के दिन सामूहिक होली जलने वाले स्थानों पर होली का दांड़ा रोप दिया जाता है और वहां लकड़ी, कन्डे आदि एकत्रित होने लगते है। बसंत पंचमी से ही मंदिरों में भगवान के श्रृंगार में अबीर-गुलाल का प्रयोग होने लगता है और धमार के स्वर गूंजने लगते है। गांव की चौपालों पर ढोलक खनकने लगती है,झांझ-मंजीरे झंकृत हो उठते है और गूंज उठते है होली के रसिया।

ब्रज की होली की यह अन्यतम विशेषता है कि यहां रंग-गुलाल के अतिरिक्त अनेकानेक प्रकार से होली खेली जाती है। एक ओर पुरुषों का दल, दूसरी ओर स्त्रियों का दल और साखी गाते हुए होली खेली जाती है। रंग में भीगे कोड़ों को मारते हुए होली खेली जाती है, लाठियों से होली खेली जाती है, अंगारों की होली होती है,फूलों की होली होती है। कुछ वर्षो पूर्व तक गोबर, कीचड़ और धूल से भी होली खेली जाती थी। होली खेलने का प्रकार कुछ भी हो, होली में जो रस बरसता है वह रस स्वर्ग में भी नहीं है इसीलिए कहा जाता है- ऐसो रस बरसै ब्रज होरी सो रस बैकुंठऊ में नांइ।

ब्रज में होली का रस-रंग मदमाते फागुन की फगुनौटी बयार के साथ तीव्रता से उभरने लगता है। फागुन माह के स्वागत में- 'भागन ते फागुन आयौ रे कोई जीबै सो खेले होरी फागु' के स्वर गूंज उठते है। ब्रज में फागुन के आगमन की सूचना पंडित जी के पत्रे या मुनादी से नहीं होती है। ब्रज की स्त्रियों के होठों और नयनों में बिहंसती मुस्कान और नयनों में हंसते काजल से हो जाती है फागुन की पहचान।

खेतों में लहलहाती सरसों और उद्यान-वाटिकाओं में सुरभित पुष्पों के मादक वातावरण में ब्रजबालाओं के नुकीले नयन होली खेलते है, प्रेम-प्रीति की पचरंग पिचकारी चलाते है-

आजौ नैना री नुकीले नये ढंग खेलि रहे रंग होरी
नैन ही खेलें, नैन खिलामें, नैना डारें रंग,
नैनां मारे प्रेम-प्रीत की
पिचकारी रे पचरंग,
भिजोई दैं बरजोरी।

होली सामान्यतः देवर-भाभी का पर्व है किन्तु मथुरा से लगभग 50 किलोमीटर दूर जाव नामक गांव में राधा और बलराम अर्थात् जेठ और बहू का हुरंगा होता है। इस अनूठे हुरंगे में बलराम के प्रतीक रूप में बठैन गांव के हुरिहार जाव गांव की स्त्रियों से होली खेलते है किन्तु मर्यादा के साथ। चैत्र कृष्ण द्वितीया से लेकर नवमी तक हुरंगों के अतिरिक्त ब्रज के आठ गांवों- मुखराई, ऊमरी, नगरी, रामपुर, अहमल कलां, सबला का नगला तथा सौंख में चन्दा की चांदनी में रात्रि को चरकुला नृत्य के आयोजन होते है। ब्रजांगनाएं सैकड़ों दीपकों से जगमगाता काफी वजनी चरकुला सिर पर रखकर स्वर-ताल पर नृत्य करती है। नृत्य के अन्त में नृत्यांगनाओं को आशीर्वाद दिया जाता है- जुग-जुग जीऔ गोरी नाचनहारी। बसंत पंचमी से चैत्र कृष्णा नवमी तक गीत-संगीत-नृत्य संजोये 50 दिनों तक विविध रूपों से मुखरित ब्रज की होली में यमुना की लहरे पिचकारियां चलाती है और गिरिराज गोवर्धन गुलाल उड़ाता है। ब्रज की होली के रंग में रंगभीने, रसभीने ब्रजवासियों का मन तृप्त नहीं हो पाता है और उनकी सदा यह कामना रहती है- चिरंजीवी रहे ब्रज की रंग होरी, चिरंजीवी रहे

ब्रज की रस-होरी।

अंगारों की होली

मथुरा जिले की छाता तहसील में फालैन गांव आज भी जलते अंगारों पर पण्डा के चलने के का गवाह है। यह क्षेत्र भक्त प्रह्लाद का क्षेत्र कहलाता है और यहां पण्डा होलिका दहन के बाद अंगारों पर चलता है।

फूलों की होली

मंदिर-देवालयों में रंग गुलाल-अबीर की रौनक होती है तो कहीं भक्त भगवन के साथ फूलों की होली खेलते है। इस दौरान मंदिरों की छटा इंद्रधनुषी हो जाती है। रोज़ अलग-अलग कलाकार अपने फ़न का मुज़ाहिरा कर अपने प्रिय कान्हा के साथ होली खेलने का चित्रण करते हैं।वैसे कान्हा का वृन्दावन तो जयपुर से दूर है मगर गोविंद देव मंदिर में जब फाग उत्सव का आयोजन किया गया तो वहाँ बरसाना भी था और जमुना का तट भी क्योंकि गोविंद देव जयपुर के अधिपति माने जाते है।

काशी (बनारस) की होली

अपने अनूठेपन के साथ काशी की होली अलग महत्व रखती है। काशी की होली बाबा विश्वनाथ के दरबार से शुरू होती है। रंगभरी एकादशी के दिन काशीवासी भोले बाबा संग अबीर-गुलाल खेलते हैं। होली का यह सिलसिला बुढ़वा मंगल तक चलता है। भांग, पान और ठंडाई की जुगलबंदी के साथ अल्हड़ मस्ती और हुल्लड़बाजी के रंगों में घुली बनारसी होली की बात ही निराली है। फागुन का सुहानापन बनारस की होली में ऐसी जीवंतता भरता है कि फिजा में रंगों का बखूबी अहसास होता है। बाबा विश्वनाथ की नगरी में फाल्गुनी बयार भारतीय संस्कृति का दीदार कराती है, संकरी गलियों से होली की सुरीली धुन या चौराहों के होली मिलन समारोह बेजोड़ हैं।

गंगा घाटों पर आपसी सौहार्द के बीच रंगों की खुमारी का दीदार करने देश-विदेश के सैलानी जुटते हैं। यहां की खास मटका फोड़ होली और हुरियारों के ऊर्जामय लोकगीत हर किसी को अपने रंग में ढाल लेते हैं। फाग के रंग और सुबह-ए-बनारस का प्रगाढ़ रिश्ता यहां की विविधताओं का अहसास कराता है। गुझिया, मालपुए, जलेबी और विविध मिठाइयों, नमकीनों की खुशबू के बीच रसभरी अक्खड़ मिजाजी और किसी को रंगे बिना नहीं छोड़ने वाली बनारस की होली नायाब है। मंदिरों, गलियों और गंगा घाटों से लबरेज इस उम्दा शहर का जिक्र जेहन में पुरातनता, पौराणिकता, धर्म एवं संस्कृति के साथ साड़ी, गलीचे, लंगड़ा आम आदि विशेषणों को ताजा कर देता है। अपने अनूठेपन के साथ काशी की होली अलग महत्व रखती है। काशी की होली बाबा विश्वनाथ के दरबार से शुरू होती है। रंगभरी एकादशी के दिन काशीवासी भोले बाबा संग अबीर-गुलाल खेलते हैं और फिर सभी होलियाना माहौल में रंग जाते हैं। होली का यह सिलसिला बुढ़वा मंगल तक चलता है।

होली पर निकलती है बारात

बनारस की होली का एक अनूठा और मस्ती भरा रंग है होली की बारात। इसमें यहां के मुकीमगंज से बैंड-बाजे के साथ निकलने वाली होली बारात में बाकायदा दूल्हा रथ पर सवार होता है। बारात के नियत स्थान पर पहुंचते ही महिलाएं परंपरागत ढंग से दूल्हे का परछन करती हैं। मंडप सजाया जाता है, जिसमें दुल्हन आती है, फिर शुरू होती है वर-वधू के बीच बहस और दुल्हन के शादी से इंकार करने पर बारात रात में लौट जाती है।

भांग और ठंडाई के बिना बनारसी होली की कल्पना भी नहीं कर सकते। यहां भांग को शिवजी का प्रसाद मानते हैं , जिसका रंग जमाने में अहम रोल होता है। होली पर यहां भांग का खास इंतजाम करते हैं। तमाम वरायटीज की ठंडाई घोटी जाती है , जिनमें केसर , पिस्ता , बादाम , मघई पान , गुलाब , चमेली , भांग की ठंडाई काफी प्रसिद्ध है। कई जगह ठंडाई के साथ भांग के पकौडे.बतौर स्नैक्स इस्तेमाल करते हैं , जो लाजवाब होते हैं। भांग और ठंडाई की मिठास और ढोल – नगाड़ों की थाप पर जब काशी वासी मस्त होकर गाते हैं , तो उनके आसपास का मौजूद कोई भी शख्स शामिल हुए बिना नहीं रह सकता।

होरियारों का जोगीरा

'जोगीरा सा रा रा रा' की हुंकार बनारस की होली का अलग अंदाज दरसाता है। जोगीरा की पुकार पर आसपास के हुरियारे वाहवाही लगाए बिना नहीं रह सकते और यही विशेषता अल्हड़ मस्ती दर्शाती है। इसके अलावा 'रंग बरसे भींगे चुनर वाली, रंग बरसे' और 'होली खेले रघुबीरा अवध में होली खेले रघुबीरा 'जैसे गीतों की धुनें भी भांग और ठंडाई से सराबोर पूरे बनारस ही झूमा देती हैं। गंगा घाटों पर मस्ती का यह आलम रहता है कि विदेशी पर्यटक भी अपने को नहीं रोक पाते और रंगों में सराबोर हो ठुमके लगाते हैं। 'रंग, भंग, गारी (गाली) और संगीत

बनारसी होली की विशेषता है।

एक जमाना था, जब सिद्धेश्वरी देवी, जानकी बाई छप्पन छुरी जैसे गायकी के दिग्गज महीने भर पहले से होली गीत बनाते थे। रईसों में होड़ मचती थी कि कौन सबसे सिद्धहस्त संगीतज्ञ या गायकी के धनी का साथ पाता है। ऐसे ही , जानकी बाई का संगीत नहीं सुन पाने से एक रईस ने उन्हें छुरी से 56 बार चोट पहुंचाई , तभी से उनका नाम जानकी बाई छप्पन छुरी पड़ गया। अब गायकी लुप्त हो रही है , जिसे बचाना हमारा धर्म है , अगर बनारसी होली के सभी गाने मिला दें , तो सचमुच बनारस (बना हुआ रस) हो जाए। '

होली के दिन घरों में खीर, पूरी और पूड़े आदि विभिन्न व्यंजन पकाए जाते हैं। इस अवसर पर अनेक मिठाइयाँ बनाई जाती हैं जिनमें गुझियों का स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। बेसन के सेव और दहीबड़े भी सामान्य रूप से उत्तर प्रदेश में रहने वाले हर परिवार में बनाए व खिलाए जाते हैं। कांजी, भांग और ठंडाई इस पर्व के विशेष पेय होते हैं। होली में बहुत-सी वैरायटी के पकवान बनाए जाते हैं जिनमें श्रीखंड, आम या अंगूरी का श्रीखंड,मालपुआ, गुझिया, खीर, कांजी बड़ा, पूरन पोली, कचौरी, पपड़ी, मूंग हलवा आदि व्यंजन घरों में मुख्य रूप से तैयार किए जाते हैं जिसकी तैयारी गृहणियां हफ्ते भर पहले से शुरू कर देती हैं।

रंगों का आध्यात्म

होली भारत का एक विशिष्ट सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक त्यौहार है। अध्यात्म का अर्थ है मनुष्य का ईश्वर से संबंधित होना या स्वयं का स्वयं के साथ संबंधित होना है। इसलिए होली मानव का परमात्मा से एवं स्वयं से स्वयं के साक्षात्कार का पर्व है। होली रंगों का त्यौहार है। रंग सिर्फ प्रकृति और चित्रों में ही नहीं हमारी आंतरिक ऊर्जा में भी छिपे होते हैं, जिसे हम आभामंडल कहते है। एक तरह से यही आभामंडल विभिन्न रंगों का समवाय है, संगठन है। हमारे जीवन पर रंगों का गहरा प्रभाव होता है, हमारा चिन्तन भी रंगों के सहयोग से ही होता है। हमारी गति भी रंगों के सहयोग से ही होती है। हमारा आभामंडल, जो सर्वाधिक शक्तिशाली होता है, वह भी रंगों की ही अनुकृति है। पहले आदमी की पचहान चमड़ी और रंग-रूप से होती थी। आज वैज्ञानिक दृष्टि इतनी विकसित हो गई कि अब पहचान त्वचा से नहीं, आभामंडल से होती है। होली का अवसर अध्यात्म के लोगों के लिये ज्यादा उपयोगी एवं महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसलिये अध्यात्म एवं योग के विशेषज्ञ विभिन्न रंगों के ध्यान एवं साधना के प्रयोगों से आभामंडल को सशक्त बनाते हैं। इस तरह होली कोरा आमोद-प्रमोद का ही नहीं, अध्यात्म का भी अनूठा पर्व है। होली का त्यौहार एवं उससे जुड़ी बसंत ऋतु दोनों ही पुरुषार्थ के प्रतीक हैं। इस अवसर पर प्रकृति सारी खुशियां स्वयं में समेटकर

दुलहन की तरह सजी-सवरी होती है। पुराने की विदाई होती है और नया आता है। पेड-पौधे भी इस ऋतु में नया परिधान धारण कर लेते हैं। बसंत का मतलब ही है नया। नया जोश, नई आशा, नया उल्लास और नयी प्रेरणा- यह बसंत का महत्वपूर्ण अवदान है और इसकी प्रस्तुति का बहाना है होली जैसा अनूठा एवं विलक्षण पर्व। मनुष्य भीतर से खुलता है वक्त का पारदर्शी टुकड़ा बनकर, सपने सजाता है और उनमें सचाई का रंग भरने का प्राणवान संकल्प करता है। इसलिय होली को वास्तविक रूप में मनाने के लिये माहौल भी चाहिए और मन भी। तभी हम मन की गंदी परतों को उतार कर न केवल बाहरी बल्कि भीतर परिवेश को मजबूत बना सकते हैं।

होली पर रंगों की गहन साधना हमारी संवदेनाओं को भी उजली करती है। क्योंकि असल में होली बुराइयों के विरुद्ध उठा एक प्रयत्न है, इसी से जिंदगी जीने का नया अंदाज मिलता है, औरों के दुख-दर्द को बाँटा जाता है, बिखरती मानवीय संवेदनाओं को जोड़ा जाता है। लेकिन विडम्बना है कि आनंद, उल्लास और अध्यात्म के इस सबसे मुखर त्योहार को हमने कहाँ-से-कहाँ लाकर खड़ा कर दिया है। कभी होली के चंग की हुंकार से जहाँ मन के रंजिश की गाँठें खुलती थीं, दूरियाँ सिमटती थीं वहाँ आज होली के हुड़दंग, अश्लील हरकतों और गंदे तथा हानिकारक पदार्थों के प्रयोग से भयाक्रांत डरे सहमे लोगों के मनों में होली का वास्तविक अर्थ गुम हो रहा है। होली के मोहक रंगों की फुहार से जहाँ प्यार, स्नेह और अपनत्व बिखरता था आज वहीं खतरनाक केमिकल, गुलाल और नकली रंगों से अनेक बीमारियाँ बढ़ रही हैं और मनों की दूरियाँ भी। हम होली कैसे खेलें? किसके साथ खेलें? और होली को कैसे अध्यात्म-संस्कृतिपरक बनाएँ? होली को आध्यात्मिक रंगों से खेलने की एक पूरी प्रक्रिया आचार्य महाप्रज्ञ द्वारा प्रणित प्रेक्षाध्यान पद्धति में उपलब्ध है। इसी प्रेक्षाध्यान के अंतर्गत लेश्या ध्यान कराया जाता है, जो रंगों का ध्यान है। होली पर प्रेक्षाध्यान के ऐसे विशेष ध्यान आयोजित होते हैं, जिनमें ध्यान के माध्यम से विभिन्न रंगों की होली खेली जाती है। बचपन में अपने पिताजी के साथ होली के अवसर पर मैंने ऐसे ही आध्यात्मिक रंगों से होली का अपूर्व एवं विलक्षण आनंद पाया जो आज तक मेरे स्मृति पटल पर तरोताजा है।

यह तो स्पष्ट है कि रंगों से हमारे शरीर, मन, आवेगों, कषायों आदि का बहुत बड़ा संबंध है। शारीरिक स्वास्थ्य और बीमारी, मन का संतुलन और असंतुलन, आवेगों में कमी और वृद्धि- ये सब इन प्रयत्नों पर निर्भर है कि हम किस प्रकार के रंगों का समायोजन करते हैं और किस प्रकार हम रंगों से अलगाव या संश्लेषण करते हैं। उदाहरणतः नीला रंग शरीर में कम होता है, तो क्रोध अधिक आता है, नीले रंग के ध्यान से इसकी पूर्ति हो जाने पर गुस्सा कम हो जाता है। श्वेत रंग की कमी होती है, तो अशांति बढ़ती है, लाल रंग की कमी होने पर आलस्य और जड़ता पनपती है। पीले रंग की कमी होने पर ज्ञानतंतु निष्क्रिय बन जाते हैं। ज्योतिकेंद्र पर श्वेत रंग, दर्शन-केंद्र पर लाल रंग और ज्ञान-केंद्र पर पीले रंग का ध्यान करने से क्रमशः शांति, सक्रियता और ज्ञानतंतु की सक्रियता उपलब्ध होती है। होली के ध्यान में शरीर के विभिन्न अंगों पर विभिन्न रंगों का ध्यान कराया जाता है और इस तरह रंगों के ध्यान में गहराई से उतरकर हम विभिन्न रंगों से रंगे हुए लगने लगा।

लेश्या ध्यान रंगों का ध्यान है। इसमें हम निश्चित रंग को निश्चित चैतन्य-केंद्र पर देखने का प्रयत्न करते हैं। रंगों का साक्षात्कार करने के लिए विविध रंगों की जानकारी आवश्यक है। रंगों के हमें दो भेद करने होंगे चमकते हुए (Bright) यानी प्रकाश के रंग और अंधे (Dull) यानी अंधकार के रंग। अंधकार का काला, नीला और कापोत रंग अप्रशस्त है। किंतु प्रकाश का काला, नीला और कापोत रंग अप्रशस्त नहीं है। इसी प्रकार अंधकार का लाल, पीला और श्वेत रंग प्रशस्त नहीं है और प्रकाश का लाल, पीला और श्वेत रंग प्रशस्त है। ध्यान में जिन रंगों को हमें देखना है, वे प्रकाश के यानी चमकते हुए होने चाहिए, अंधकार के यानी अंधे नहीं। आचार्य श्री महाप्रज्ञ इसे अधिक स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि जब व्यक्ति का चरित्र शुद्ध होता है तब उसका संकल्प अपने आप फलित होता है। चरित्र की शुद्धि के आधार पर संकल्प की क्षमता जागती है। जिसका संकल्प-बल जाग जाता है उसकी कोई भी कामना अधूरी नहीं रहती। संकल्प लेश्याओं को प्रभावित करते हैं। लेश्या का बहुत बड़ा सूत्र है- चरित्र, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या ओर शुक्ललेश्या- ये तीन उज्ज्वल लेश्याएँ हैं। इनके रंग चमकीले होते हैं। कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्या- ये तीन अशुद्ध लेश्याएँ हैं। इनके रंग अंधकार के रंग होते हैं। वे विकृत भाव पैदा करते हैं। वे रंग हमारे आभामंडल को धूमिल बनाते हैं। चमकते रंग आभामंडल में निर्मलता और उज्ज्वलता लाते हैं। वे आभामंडल की क्षमता बढ़ाते हैं। उनकी जो विद्युत-चुंबकीय रश्मियाँ हैं वे बहुत शक्तिशाली बन जाती हैं।

होली के लिए विशेष तौर से तैयार किए इस विशेष ध्यान

उपक्रम में प्रत्येक रंग का ध्यान में साक्षात्कार करने के लिए संकल्प-शक्ति का प्रयोग करवाया जाता है। संकल्प-शक्ति का अर्थ है-कल्पना करना अर्थात् मानसिक चक्षु से इसे स्पष्ट रूप से देखना। यह इस पद्धति का मूल आधार है। कल्पना जितनी अधिक देर टिकेगी और जितनी सघन होगी, उतनी ही सफलता मिलेगी। फिर उस कल्पना को भावना का रूप देना, दृढ़ निश्चय करना। जब हमारी कल्पना उठती है और वह दृढ़ निश्चय में बदल जाती है तो वह संकल्प-शक्ति बन जाती है। पहले पहले कल्पना में इतनी ताकत नहीं होती, किंतु कल्पना को जब संकल्प शक्ति की पुट लगती है, उसकी ताकत बढ़ जाती है। जब कल्पना सुदृढ़ बन जाती है, तब जो रंग हम देखना चाहते हैं, वह साक्षात् दिखाई देने लग जाता है। प्रेक्षा प्रशिक्षक मुनि किशनलालजी कहते हैं। रंगों की कल्पना की सहायता के लिए ध्यान करने से पूर्व उस रंग को खुली आँखों से अनिमेष दृष्टि से उसी रंग के कागज या प्रकाश के द्वारा कुछ देर तक देख लेने से वह रंग आसानी से कल्पना में आ जाता है। इसके लिए व्यवहार में सेलीफीन पेपर (रंग वाले चिकने पारदर्शी कागज) का व्यवहार किया जाता है। जिसे रंग के कागज को प्रकाश को स्त्रोत के सामने रखा जाता है, उसी रंग का प्रकाश हमारी आँखों के सामने आता है। फिर वही रंग बंद आँखों से भी स्पष्ट दिखाई देने लग जाता है।

रंग का साक्षात्कार करने के लिए चित्त की स्थिरता या एकाग्रता अनिवार्य है। एकाग्रता का अर्थ है- एक ही कल्पना पर स्थिर रहना, उसका ही चिंतन करते रहना। जब एकाग्रता सधती है, जब चित्त स्थिर बनता है, तब वह कल्पना के रंगों की तरंगों को अपने सूक्ष्म शरीर-तैजस शरीर की सहायता से उत्पन्न करता है। अब कल्पना समाप्त हो जाती है और वास्तविक रंगों की उत्पत्ति हो जाती है। असल में लेश्या ध्यान का प्रयोग चोटी पर चढ़ने जैसा है। किसी-किसी व्यक्ति को इसमें शीघ्र सफलता मिलती है, पर किसी-किसी को कुछ समय लगता है। वैसी स्थिति में व्यक्ति को न निराश होना चाहिए और न ही अपना धैर्य खोना चाहिए। दृढ़ संकल्प के साथ प्रयत्न को चालू रखना चाहिए।

प्रत्येक व्यक्ति में अनंत शक्ति निहित है। किंतु वह अपनी शक्ति से परिचित नहीं है। अपेक्षा है, अपनी शक्ति को जानने की, उससे परिचित होने की और उसमें आस्था की। लेश्या ध्यान उसका अचूक उपाय है। कभी-कभी जिस रंग को देखना चाहते हैं, उसके स्थान पर कोई अन्य रंग का अनुभव होने लगता है पर इससे भी निराश होने की जरूरत नहीं है। प्रत्युत किसी भी रंग का दिखना इस बात का प्रमाण है कि ध्यान सध रहा है। दूसरे रंगों का दिखना भी संकल्प-शक्ति और वर्ण-शक्ति का परिणाम है। यद्यपि यह बहुत बड़ी उपलब्धि नहीं है, फिर भी इसका अपना महत्त्व है, क्योंकि इससे व्यक्ति की श्रद्धा और आस्था को बल मिलता है। जब तक कोई अनुभव नहीं होता, तो ऐसा लगता है कि साधना फलीभूत नहीं हो रही है। अनुभव छोटा हो या बड़ा, वह बहुत काम का होता है। पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु- ये पांच तत्व हैं। शरीर इन्हीं पांच तत्वों से निर्मित है। इनके अलग-अलग स्थान निर्धारित हैं। माना गया है कि पैर के घुटने तक का स्थान पृथ्वी तत्व प्रधान है। घुटने से लेकर दृष्टि तक का स्थान जल तत्व प्रधान है। कटि से लेकर पेट तक का भाग अग्नि तत्व प्रधान है। वहां से हृदय तक का भाग आकाश तत्व प्रधान है। तत्वों के अपने रंग भी होते हैं। पृथ्वी तत्व का रंग पीला है। जल तत्व का रंग श्वेत है। अग्नितत्व का रंग लाल है। वायुतत्व का रंग हरा-नीला है। आकाशतत्व का रंग नीला है। ये रंग हमारे जीवन को प्रभावित करते हैं। पूरी रंग थेरेपी, क्रोमो थेरेपी रंगों के आधार पर ही काम करते हैं। होली पर इन पांच तत्व और उनसे जुड़े रंगों का ध्यान करने से हमारा न केवल शरीर बल्कि सम्पूर्ण वातावरण शुद्ध और सशक्त बन जाता है। रंगों से खेलने एवं रंगों के ध्यान के पीछे एक बड़ा दर्शन है, एक स्पष्ट कारण है। निराश, हताश और मुरझाएं जीवन में इससे एक नई ताजगी, एक नई रंगीनी एवं एक नई ऊर्जा आती है। रंग बाहर से ही नहीं, आदमी को भीतर से भी बहुत गहरे सराबोर कर देता है।

होली लौकिक व्यवहार में प्रमुख भारतीय त्योहार होने के साथ साधना की दृष्टि से भी विशेष तंत्रोक्त-मंत्रोक्त सिद्धमय महापर्व है।होली को पूर्व दिशा की ओर हवा चले तो राजा एवं प्रजा सुखी अर्थात पूरे राज्य में सुख शांति होगी। दक्षिण की ओर हवा चले तो राज्य की सत्ता भंग और शासन पक्ष को परेशानी, पश्चिम दिशा की ओर हवा चले तो तृण एवं सम्पत्ति बढ़ेगी और उत्तर की ओर हवा चले तो धान्य की वृद्धि होगी। यदि होली का धुआं आकाश की ओर सीधा जाए तो राजा का गढ़ टूटेगा और राज्य के बड़े नेताओं की कुर्सी जाएगी। ऐसा माना जाता है। होली की रात्रि सिद्धिदायक रात्रि मानी जाती है, इस रात्रि में तंत्र-मंत्र एवं साधनाओं का विशेष रूप से रुझान होता है क्योंकि इस रात्रि में सम्पन्न की गई छोटी से छोटी साधना एवं प्रयोग भी जीवन को बदल देने में समक्ष हैं। यह पर्व नई सिद्धियां हासिल करने का उत्तम अवसर है एवं पुरानी सिद्धियों को शक्ति सम्पन्न बनाने का भी।

संगीत में होली

भारतीय शास्त्रीय संगीत तथा लोक संगीत की परंपरा में होली का विशेष महत्व है। हिंदी फ़िल्मों के गीत भी होली के रंग से अछूते नहीं रहे हैं। होली के सतरंगी रंगों के साथ सात सुरों का अनोखा संगम देखने को मिलता है! रंगों से खेलते समय मन में खुशी, प्यार और उमंग छा जाते हैं और अपने आप तन मन नृत्य करने को मचल उठता है। लय और ताल के साथ पैर को रोकना मुश्किल हो जाता है। रंग अपना असर बताते हैं, सुर और ताल अपनी धुन में सब को डुबोये चले जाते हैं!

डॉ0 अर्चना तिवारी

“होली पर गाने बजाने का अपने आप वातावरण बन जाता है और जन जन पर इसका रंग छाने लगता है। इस अवसर पर एक विशेष लोकगीत गाया जाता है जिसे होली कहते हैं। अलग-अलग स्थानों पर होली के विभिन्न वर्णन सुनने को मिलते है जिसमें उस स्थान का इतिहास और धार्मिक महत्व छुपा रहता है।”

लेखिका प्रखर राष्ट्रवादी चिंतक और शिक्षाविद् हैं।

शास्त्रीय संगीत में धमार का होली से गहरा संबंध है। ध्रुपद, धमार, छोटे व बड़े ख्याल और ठुमरी में भी होली के गीतों का सौंदर्य देखते ही बनता है। कथक नृत्य के साथ होली, धमार और ठुमरी पर प्रस्तुत की जाने वाली अनेक सुंदर बंदिशें आज भी अत्यंत लोकप्रिय हैं – चलो गुंइयाँ आज खेलें होरी कन्हैया घर। इसी प्रकार संगीत के एक और अंग ध्रुपद में भी होली के सुंदर वर्णन मिलते हैं।

ध्रुपद में गाये जाने वाली एक लोक के बोल देखिए-

'खेलत हरी संग सकल,
रंग भरी होरी सखी,
कंचन पिचकारी करण,
केसर रंग बोरी आज।
भीगत तन देखत जन,
अति लाजन मन ही मन,
ऐसी धूम बृंदाबन,
मची है नंदलाल भवन।'

धमार संगीत का एक अत्यंत प्राचीन अंग है। गायन और वादन दोनों में इसका प्रयोग होता है। यह ध्रुपद से काफी मिलता जुलता है पर एक विशेष अंतर यह है कि इसमें वसंत, होली और राधा कृष्ण के मधुर गीतों की अधिकता है। इसे चौदह मात्रा की धमार ही नाम की ताल के साथ विशेष रूप से गाया जाता है इसमें निबद्ध एक प्रसिद्ध होली के बोल हैं – आज पिया होरी खेलन आए

भारतीय शास्त्रीय संगीत में कुछ राग ऐसे हैं जिनमें होली के गीत विशेष रूप से गाए जाते हैं। बसंत, बहार,हिंडोल और काफी ऐसे ही राग हैं। बसंत राग पर आधारित प्रसिद्ध बंदिशें हैं–

'फगवा ब्रज देखन को चलो रे,
फगवे में मिलेंगे, कुँवर कां
जहाँ बात चलत बोले कागवा।

बहार राग पर आधारित 'छम छम नाचत आई बहार'

'आज खेलो शाम संग होरी
पिचकारी रंग भरी सोहत री।'

होली पर गाने बजाने का अपने आप वातावरण बन जाता है और जन जन पर इसका रंग छाने लगता है। इस अवसर पर एक विशेष लोकगीत गाया जाता है जिसे होली कहते हैं। अलग-अलग स्थानों पर होली के विभिन्न वर्णन सुनने को मिलते है जिसमें उस स्थान का इतिहास और धार्मिक महत्व छुपा रहता है। जहाँ ब्रज धाम में राधा और कृष्ण के होली खेलने के वर्णन मिलते हैं वहीं अवध में राम और सीता के।

जैसे गुजरात में नवरात्र, महाराष्ट्र में गणेश चतुर्थी, पंजाब में बैसाखी, दक्षिण भारत में पोंगल, बंगाल में दुर्गा पूजा, को बहुत ही धूमधाम से मनाया जाता है और महत्व दिया जाता है, ऐसे ही राजस्थान में होली का बहुत महत्व है और इन त्योहार में संगीत का एक अलग ही स्थान रहा है। संगीत बिना इन सब त्योहारों की कल्पना भी करना मुश्किल-सा लगता है।

भारतीय फ़िल्मों में भी अलग-अलग रागों पर आधारित होली के गीत प्रस्तुत किए गए हैं जो काफी लोकप्रिय हुए हैं। 'सिलसिला' के गीत 'रंग बरसे भीगे चुनर वाली, रंग बरसे' और 'नवरंग' के 'आया होली का त्योहार, उड़े रंगों की बौछार,' को आज भी लोग भूल नहीं पाए हैं।

इस तरह, रंग और संगीत चोली दामन की तरह एक दूसरे

से जुड़े हुए हैं। उनका असर मन पर, कैसे और कितनी हद तक होता है, यह होली के त्योहार में दिखाई देता है। मन की खुशी, प्रेम, उमंग, तरंग इन सब भावों को अभिव्यक्त करने के लिये रंग और संगीत होली के त्योहार का अनोखा माध्यम बन जाते हैं। लोग अपने मन के दुख और द्वेष भाव को मिटाकर रंगों की दुनिया में सुर और ताल के संग अपने आप को डुबो लेते हैं। चारों तरफ़ खुशी, प्यार और अपनेपन का एक अलग वातावरण बन जाता हैं। रंग मन के भावों को अभिव्यक्त करते हैं, संगीत जीवन की साधना है, और इन दोनों के समन्वय की मिसाल है होली का बेमिसाल त्योहार।

कथक नृत्य के साथ होली, धमार और ठुमरी पर प्रस्तुत की जाने वाली अनेक सुंदर बंदिशें जैसे चलो गुंइयां आज खेलें होरी कन्हैया घर आज भी अत्यंत लोकप्रिय हैं। ध्रुपद में गाये जाने वाली एक लोकप्रिय बंदिश है खेलत हरी संग सकल, रंग भरी होरी सखी। भारतीय शास्त्रीय संगीत में कुछराग ऐसे हैं जिनमें होली के गीत विशेष रूप से गाए जाते हैं। बसंत, बहार,हिंडोल

और काफ़ी ऐसे ही राग हैं। होली पर गाने बजाने का अपने आप वातावरण बन जाता है और जन जन पर इसका रंग छाने लगता है। उपशास्त्रीय संगीत में चैती, दादरा और ठुमरी में अनेक प्रसिद्ध होलियाँ हैं। होली के अवसर पर संगीत की लोकप्रियता का अंदाज़ इसी बात से लगाया जा सकता है कि संगीत की एक विशेष शैली का नाम ही होली हैं, जिसमें अलग अलग प्रांतों में होली के विभिन्न वर्णन सुनने को मिलते है जिसमें उस स्थान का इतिहास और धार्मिक महत्व छुपा होता है।

राधा-कृष्ण की होली

रंगों से सराबोर होली को खेलने में भला देवतागण भला पीछे क्यों रहे? राधा-कृष्ण की होली के रंग ही कुछ और है। ब्रज की होली का रंग ही निराला है। अपने भयामा भयाम के संग रंग में रंगोली बनाकर ब्रजवासी भी होली खेलने के लिए हुरियार बन जाते हैं और ब्रज की नारियाँ हुरियारिनों के रूप में साथ होते हैं और चारों ओर एक ही स्वर सुनाई देता है -

आज बिरज में होली रे रसिया, होली रे रसिया, बरजोरी रे रसिया।

उड़त गुलाल लाल भए बादर,
केसर रंग में बोरी रे रसिया।
बाजत ताल मृदंग झांझ ढप,
और मजीरन की जोरी रे रसिया।
फेंक गुलाल हाथ पिचकारी,
मारत भर भर पिचकारी रे रसिया।
इतने आये कुँवरे कन्हैया,
उतसों कुँवरि किसोरी रे रसिया।
नंदग्राम के जुरे हैं सखा सब,
बरसाने की गोरी रे रसिया।
दौड़ मिल फाग परस्पर खेलें,
कहि कहि होरी होरी रे रसिया।

इतना ही नहीं वह भयाम सखाओं को चुनौती देती है कि होली में जीतकर दिखाओ। उनमें ऐसा अद्भूत उत्साह जागृत होता है कि सब ग्वाल-बालों को अपना चेला बनाकर बदला चुकाना चाहती हैं। जिन ब्रज बालों ने अटारी में चढ़ी हुई ब्रजगोपियों को संकोची समझा था, आज वे ही होली खेलने को तैयार हैं। पेश है इस दृश्य की एक बानगी -

होरी खेलूँगी भयाम तोते नाय हारूँ
उड़त गुलाल लाल भए बादर,
भर गडुआ रंग को डारूँ
होरी में तोय गोरी बनाऊँ लाला,
पाग झगा तरी फारूँ
औचक छतियन हाथ चलाए,
तोरे हाथ बाँधि गुलाल मारूँ।

राम सीता की होली

अयोध्या में श्रीराम सीता जी के संग होली खेल रहे हैं। एक ओर राम लक्ष्मण भरत और शत्रुघ्न हैं तो दूसरी ओर सहेलियों के संग सीता जी। केसर मिला रंग घोला गया है। दोनों ओर से रंग डाला जा रहा है। मुँह में रोरी रंग मलने पर गोरी तिनका तोड़ती लज्जा से भर गई है। झांझ, मृदंग और ढपली के बजने से चारों ओर उमंग ही उमंग है। देवतागण आकाश से फूल बरसा रहे हैं। देखिए इस मनोरम दृश्य की एक झांकी -

खेलत रघुपति होरी हो,
संगे जनक किसोरी
इत राम लखन भरत शत्रुघ्न,
उत जानकी सभ गोरी, केसर रंग घोरी।
छिरकत जुगल समाज परस्पर,
मलत मुखन में रोरी, बाजत तृन तोरी।
बाजत झांझ, मिरिदंग, ढोलि ढप,
गृह गह भये चहुँ ओरी, नवसात संजोरी।
साधव देव भये, सुमन सुर बरसे,
जय जय मचे चहुँ ओरी, मिथलापुर खोरी।

उमा महेश्वर की होली

जब राधा-कृष्ण ब्रज में और सीता-राम अयोध्या में होली खेल रहे हैं तो भला हिमालय में उमा-महेश्वर होली क्यों न खेलें? हमेशा की तरह आज भी शिव जी होली खेल रहे हैं। उनकी जटा में गंगा निवास कर रही है और पूरे शरीर में भस्म लगा है। वे नंदी की सवारी पर हैं। ललाट पर चंद्रमा, शरीर में लिपटी मृगछाला,चमकती हुई आँखें और गले में लिपटा हुआ सर्प। उनके इस रूप को अपलक निहारती पार्वती अपनी सहेलियों के साथ रंग गुलाल से सराबोर हैं। देखिए इस अद्भुत दृश्य की झाँकी -

आजु सदासिव खेलत होरी
जटा जूट में गंग बिराजे अंग में भसम रमोरी
वाहन बैल ललाट चरनमा, मृगछाला अरू छोरी।
तीनि आँखि सुंदर चमकेला, सरप गले लिपटोरी
उदभूत रूप उमा जे दउरी, संग में सखी करोरी
हंसत लजत मुस्कात चनरमा सभे सीधि इकठोरी
लेई गुलाल संभु पर छिरके, रंग में उन्हुके नारी
भइल लाल सभ देह संभु के, गउरी करे ठिठोरी।

शिव जी के साथ भूत-प्रेतों की जमात भी होली खेल रही है। ऐसा लग रहा है मानो कैलाश पर्वत के ऊपर वटवृक्ष की छाया

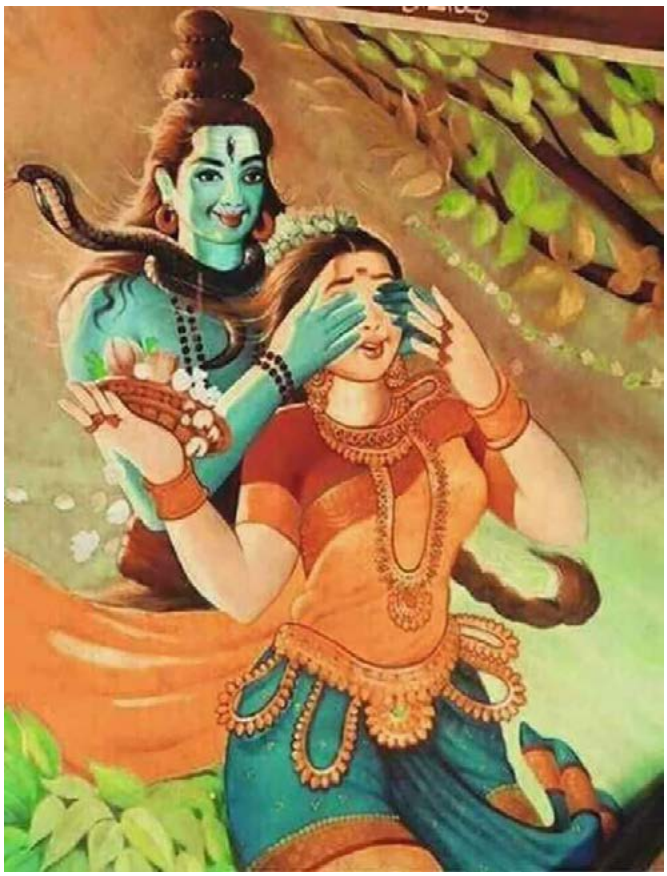

है। दिशाओं की पीले पर्दे खिंचे हुए हैं जिसकी छवि इंद्रासन जैसी दिखाई देती है। आक,धतूरा, संखिया आदि खूब पिया जा रहा है और सबने एक दूसरे को रंग लगाने की बजाय स्वयं को ही रंग लगा कर अद्भुत रूप बना लिया है, जिसे देखकर स्वयं पार्वती जी भी हँस रही हैं -

सदासिव खेलत होरी, भूत जमात बटोरी
गिरि कैलास सिखर के उपर बट छाया चहुँ ओरी
पीत बितान तने चहुँ दिसि के, अनुपम साज सजोरी
छवि इंद्रासन सोरी।
आक धतूरा संखिया माहुर कुचिला भांग पीसोरी
नहीं अघात भये मतवारे, भरि भरि पीयत कमोरी
अपने ही मुख पोतत लै लै अद्भूत रूप बनोरी
हँसे गिरिजा मुँह मोरी।

वन्दे तां परमेश्वरीं भगवतीं बुद्धिप्रदां शारदाम्

आचार्य लालमणि तिवारी

माता सरस्वती प्रमुख देवियों में से एक हैं। वे ब्रह्मा की मानसपुत्री हैं जो विद्या की अधिष्ठात्री देवी मानी गई हैं। इनका नामांतर 'शतरूपा' भी है। इसके अन्य पर्याय हैं, वाणी, वाग्देवी, भारती, शारदा, वागेश्वरी इत्यादि। ये शुक्लवर्ण, श्वेत वस्त्रधारिणी, वीणावादनतत्परा तथा श्वेतपद्मासना कही गई हैं। इनकी उपासना करने से मूर्ख भी विद्वान् बन सकता है। माघ शुक्ल पंचमी को इनकी पूजा की परिपाटी चली आ रही है। सरस्वती माँ के अन्य नामों में शारदा, शतरूपा, वीणावादिनी, वीणापाणि, वाग्देवी, वागेश्वरी, भारती आदि कई नामों से जाना जाता है।

"सरस्वती को साहित्य, संगीत, कला की देवी माना जाता है। उसमें विचारणा, भावना एवं संवेदना का त्रिविध समन्वय है। वीणा संगीत की, पुस्तक विचारणा की और मयूर वाहन कला की अभिव्यक्ति है। लोक चर्चा में सरस्वती को शिक्षा की देवी माना गया है। शिक्षा संस्थाओं में वसंत पंचमी को सरस्वती का जन्म दिन समारोह पूर्वक मनाया जाता है। पशु को मनुष्य बनाने का- अंधे को नेत्र मिलने का श्रेय शिक्षा को दिया जाता है।"

लेखक सनातन संस्कृति के आचार्य और गीता प्रेस गोरखपुर से सम्बद्ध हैं।

सरस्वती को साहित्य, संगीत, कला की देवी माना जाता है। उसमें विचारणा, भावना एवं संवेदना का त्रिविध समन्वय है। वीणा संगीत की, पुस्तक विचारणा की और मयूर वाहन कला की अभिव्यक्ति है। लोक चर्चा में सरस्वती को शिक्षा की देवी माना गया है। शिक्षा संस्थाओं में वसंत पंचमी को सरस्वती का जन्म दिन समारोह पूर्वक मनाया जाता है। पशु को मनुष्य बनाने का-अंधे को नेत्र मिलने का श्रेय शिक्षा को दिया जाता है। मनन से मनुष्य बनता है। मनन बुद्धि का विषय है। भौतिक प्रगति का श्रेय बुद्धि-वर्चस् को दिया जाना और उसे सरस्वती का अनुग्रह माना जाना उचित भी है। इस उपलब्धि के बिना मनुष्य को नर-वानरों की तरह वनमानुष जैसा जीवन बिताना पड़ता है। शिक्षा की गरिमा-बौद्धिक विकास की आवश्यकता जन-जन को समझाने के लिए सरस्वती पूजा की परम्परा है। इसे प्रकारान्तर से गायत्री महाशक्ति के अंतगर्त बुद्धि पक्ष की आराधना कहना चाहिए।

विद्या की अधिष्ठात्री

कहते हैं कि महाकवि कालिदास, वरदराजाचार्य, वोपदेव आदि मंद बुद्धि के लोग सरस्वती उपासना के सहारे उच्च कोटि के विद्वान् बने थे। इसका सामान्य तात्पर्य तो इतना ही है कि ये लोग अधिक मनोयोग एवं उत्साह के साथ अध्ययन में रुचिपूवर्क संलग्न हो गए और अनुत्साह की मनःस्थिति में प्रसुप्त पड़े रहने वाली मस्तिष्कीय क्षमता को सुविकसित कर सकने में सफल हुए होंगे। इसका एक रहस्य यह भी हो सकता है कि कारणवश दुर्बलता की स्थिति में रह रहे बुद्धि-संस्थान को सजग-सक्षम बनाने के लिए वे उपाय-उपचार किए गए जिन्हें 'सरस्वती आराधना' कहा जाता है। उपासना की प्रक्रिया भाव-विज्ञान का महत्त्वपूर्ण अंग है। श्रद्धा और तन्मयता के समन्वय से की जाने वाली साधना-प्रक्रिया एक विशिष्ट शक्ति है। मनःशास्त्र के रहस्यों को जानने वाले स्वीकार करते हैं कि व्यायाम, अध्ययन, कला, अभ्यास की तरह साधना भी एक समर्थ प्रक्रिया है, जो चेतना क्षेत्र की अनेकानेक रहस्यमयी क्षमताओं को उभारने तथा बढ़ाने में पूणर्तया समर्थ है। सरस्वती उपासना के संबंध में भी यही बात है। उसे शास्त्रीय विधि से किया जाय तो वह अन्य मानसिक उपचारों की तुलना में बौद्धिक क्षमता विकसित करने में कम नहीं, अधिक ही सफल होती है।

मन्दबुद्धि लोगों के लिए गायत्री महाशक्ति का सरस्वती तत्त्व अधिक हितकर सिद्ध होता है। बौद्धिक क्षमता विकसित करने, चित्त की चंचलता एवं अस्वस्थता दूर करने के लिए सरस्वती साधना की विशेष उपयोगिता है। मस्तिष्क-तंत्र से संबंधित अनिद्रा, सिर दर्द, तनाव, जुकाम जैसे रोगों में गायत्री के इस अंश-सरस्वती साधना का लाभ मिलता है। कल्पना शक्ति की कमी, समय पर उचित निणर्य न कर सकना, विस्मृति, प्रमाद, दीघर्सूत्रता, अरुचि जैसे कारणों से भी मनुष्य मानसिक दृष्टि से अपंग, असमर्थ जैसा बना रहता है और मूर्ख कहलाता है। उस अभाव को दूर करने के लिए सरस्वती साधना एक उपयोगी आध्यात्मिक उपचार है।

शिक्षा के प्रति जन-जन के मन-मन में अधिक उत्साह भरने-लौकिक अध्ययन और आत्मिक स्वाध्याय की उपयोगिता अधिक गम्भीरता पूवर्क समझने के लिए भी सरस्वती पूजन की परम्परा है। बुद्धिमत्ता को बहुमूल्य सम्पदा समझा जाय और उसके लिए धन कमाने, बल बढ़ाने, साधन जुटाने, मोद मनाने से भी अधिक ध्यान दिया जाय। इस लोकोपयोगी प्रेरणा को गायत्री महाशक्ति के अंतर्गत एक महत्त्वपूर्ण धारा सरस्वती की मानी गयी है और उससे लाभान्वित होने के लिए प्रोत्साहित किया गया है। सरस्वती के स्वरूप एवं आसन आदि का संक्षिप्त तात्त्विक विवेचन इस तरह है-

स्वरूप

सरस्वती के एक मुख, चार हाथ हैं। मुस्कान से उल्लास, दो हाथों में वीणा-भाव संचार एवं कलात्मकता की प्रतीक है। पुस्तक से ज्ञान और माला से ईशनिष्ठा-सात्त्विकता का बोध होता है। वाहन मयूर-सौन्दर्य एवं मधुर स्वर का प्रतीक है। इनका वाहन हंस माना जाता है और इनके हाथों में वीणा, वेद और माला होती है। भारत में कोई भी शैक्षणिक कार्य के पहले इनकी पूजा की जाती हैं।

अन्य देशों में सरस्वती

जापान में सरस्वती को 'बेंजाइतेन' कहते हैं। जापान में उनका चित्रन हाथ में एक संगीत वाद्य लिए हुए किया जाता है। जापान में वे ज्ञान, संगीत तथा 'प्रवाहित होने वाली' वस्तुओं की देवी के रूप में पूजित हैं। दक्षिण एशिया के अलावा थाइलैण्ड, इण्डोनेशिया, जापान एवं अन्य देशों में भी सरस्वती की पूजा होती है।

अन्य भाषाओ/देशों में सरस्वती के नाम-

बर्मा - थुयथदी =सूरस्सती

बर्मा - तिपिटक मेदा Tipitaka Medaw

चीन - बियानचाइत्यान biàncáitiān

जापान - बेंजाइतेन Benzaiten

थाईलैण्ड - सुरसवदी Surasawadee

सरस्वती पूजा की संपूर्ण विधि और मुहूर्त

जो लोग सरस्वती माता की पूजा करने जा रहे हैं उन्हें सबसे पहले मां सरस्वती की प्रतिमा अथवा तस्वीर को सामने रखकर उनके सामने धूप-दीप और अगरबत्ती जलानी चाहिए। इसके बाद पूजन आरंभ करना चाहिए। सबसे पहले अपने आपको तथा आसन को इस मंत्र से शुद्ध करें-

'ऊं अपवित्र : पवित्रोवा सर्वावस्थां गतोऽपिवा। यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥' इन मंत्रों से अपने ऊपर तथा आसन पर 3-3 बार कुशा या पुष्पादि से छींटें लगायें

फिर आचमन करें – ऊं केशवाय नमः ऊं माधवाय नमः, ऊं नारायणाय नमः, फिर हाथ धोएं, पुनः आसन शुद्धि मंत्र बोलें-

ऊं पृथ्वी त्वयाधृता लोका देवि त्यवं विष्णुनाधृता।
त्वं च धारयमां देवि पवित्रं कुरु चासनम्॥

शुद्धि और आचमन के बाद चंदन लगाना चाहिए। अनामिका उंगली से श्रीखंड चंदन लगाते हुए यह मंत्र बोलें 'चन्दनस्य महत्पुण्यम् पवित्रं पापनाशनम्, आपदां हरते नित्यम् लक्ष्मी तिष्ठतु सर्वदा।'

बिना संकल्प के की गयी पूजा सफल नहीं होती है इसलिए संकल्प करें। हाथ में तिल, फूल, अक्षत मिठाई और फल लेकर 'यथोपलब्धपूजनसामग्रीभिः भगवत्याः सरस्वत्याः पूजनमहं करिष्ये।' इस मंत्र को बोलते हुए हाथ में रखी हुई सामग्री मां सरस्वती के सामने रख दें। इसके बाद गणपति जी की पूजा करें।

गणपति पूजन

हाथ में फूल लेकर गणपति का ध्यान करें। मंत्र पढ़ें- गजाननम्भूतगणादिसेवितं कपित्थ जम्बू फलचारुभक्षणम्। उमासुतं शोक विनाशकारकं नमामि विघ्नेश्वरपादपंकजम्। हाथ में अक्षत लेकर गणपति का आवाहनः करें ऊं गं गणपतये इहागच्छ इह तिष्ठ।। इतना कहकर पात्र में अक्षत छोड़ें।

अर्घा में जल लेकर बोलें-

एतानि पाद्याद्याचमनीय-स्नानीयं,
पुनराचमनीयम् ऊं गं गणपतये नमः।

रक्त चंदन लगाएं-

इदम रक्त चंदनम् लेपनम् ऊं गं गणपतये नमः

इसी प्रकार श्रीखंड चंदन बोलकर श्रीखंड चंदन लगाएं। इसके पश्चात सिन्दूर चढ़ाएं -

'इदं सिन्दूराभरणं लेपनम् ऊं गं गणपतये नमः।

दुर्वा और विल्बपत्र भी गणेश जी को चढ़ाएं। गणेश जी को वस्त्र पहनाएं-

इदं पीत वस्त्रं ऊं गं गणपतये समर्पयामि।

पूजन के बाद गणेश जी को प्रसाद अर्पित करें-

इदं नानाविधि नैवेद्यानि ऊं गं गणपतये समर्पयामिः।

मिष्टान अर्पित करने के लिए मंत्रः

इदं शर्करा
घृत युक्त नैवेद्यं ऊं गं गणपतये समर्पयामिः।

प्रसाद अर्पित करने के बाद आचमन करायें-

इदं आचमनयं ऊं गं गणपतये नमः।

इसके बाद पान सुपारी चढ़ायें-

इदं ताम्बूल पुगीफल समायुक्तं ऊं गं गणपतये समर्पयामिः। अब एक फूल लेकर गणपति पर चढ़ाएं और बोलें-

एषः पुष्पान्जलि ऊं गं गणपतये नमः

इसी प्रकार से नवग्रहों की पूजा करें। गणेश के स्थान पर नवग्रह का नाम लें।

कलश पूजन

घड़े या लोटे पर मोली बांधकर कलश के ऊपर आम का पल्लव रखें। कलश के अंदर सुपारी, दूर्वा, अक्षत, मुद्रा रखें। कलश के गले में मोली लपेटें। नारियल पर वस्त्र लपेट कर कलश पर रखें। हाथ में अक्षत और पुष्प लेकर वरूण देवता का कलश में आह्वान करें।

ओ३म् त्तत्वायामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविभिः। अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मान आयुः प्रमोषीः। (अस्मिन कलशे वरुणं सांगं सपरिवारं सायुध सशक्तिकमावाहयामि, ओ३म्भूर्भुवः स्वःभो वरुण इहागच्छ इहतिष्ठ। स्थापयामि पूजयामि॥)

इसके बाद जिस प्रकार गणेश जी की पूजा की है उसी प्रकार वरूण और इन्द्र देवता की पूजा करें।

सरस्वती पूजन

सबसे पहले माता सरस्वती का ध्यान करें

या कुन्देन्दु तुषारहार धवला या शुभ्रवस्त्रावृता।
या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना ।।
या ब्रह्माच्युतशंकरप्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता।
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा ।।1।।

शुक्लां ब्रह्मविचारसारपरमांद्यां जगद्व्यापनीं ।
वीणा-पुस्तक-धारिणीमभयदां जाड्यांधकारपहाम्।।
हस्ते स्फाटिक मालिकां विदधतीं पद्मासने संस्थिताम् ।
वन्दे तां परमेश्वरीं भगवतीं बुद्धिप्रदां शारदाम्।।2।।

इसके बाद सरस्वती देवी की प्रतिष्ठा करें। हाथ में अक्षत लेकर बोलें -

'ॐ भूर्भुवः स्वः महासरस्वती, इहागच्छ इह तिष्ठ।

इस मंत्र को बोलकर अक्षर छोड़ें। इसके बाद जल लेकर-

'एतानि पाद्याद्याचमनीय-स्नानीयं, पुनराचमनीयम्।'

प्रतिष्ठा के बाद स्नान कराएं:

ॐ मन्दाकिन्या समानीतैः, हेमाम्भोरुह-वासितैः
स्नानं कुरुष्व देवेशि, सलिलं च सुगन्धिभिः।।

ॐ श्री सरस्वतयै नमः।। इदं रक्त चंदनम् लेपनम् से रक्त चंदन लगाएं। इदं सिन्दूराभरणं से सिन्दूर लगाएं। 'ॐ मन्दार-पारिजाताद्यैः, अनेकैः कुसुमैः शुभैः। पूजयामि शिवे, भक्तया, सरस्वतयै नमो नमः।। ॐ सरस्वतयै नमः, पुष्पाणि समर्पयामि।'इस मंत्र से पुष्प चढ़ाएं फिर माला पहनाएं। अब सरस्वती देवी को इदं पीत वस्त्र समर्पयामि कहकर पीला वस्त्र पहनाएं।

नैवैद्य अर्पण

पूजन के पश्चात देवी को 'इदं नानाविधि नैवेद्यानि ऊं सरस्वतयै समर्पयामि' मंत्र से नैवैद्य अर्पित करें। मिष्टान अर्पित करने के लिए मंत्रः 'इदं शर्करा घृत समायुक्तं नैवेद्यं ऊं सरस्वतयै समर्पयामि' बालें। प्रसाद अर्पित करने के बाद आचमन करायें। इदं आचमनयं ऊं सरस्वतयै नमः। इसके बाद पान सुपारी चढ़ायेंः इदं ताम्बूल पुगीफल समायुक्तं ऊं सरस्वतयै समर्पयामि। अब एक फूल लेकर सरस्वती देवी पर चढ़ाएं और बोलेंः एषः पुष्पान्जलि ऊं सरस्वतयै नमः। इसके बाद एक फूल लेकर उसमें चंदन और अक्षत लगाकर किताब कॉपी पर रख दें।

पूजन के पश्चात् सरस्वती माता के नाम से हवन करें। इसके लिए भूमि को स्वच्छ करके एक हवन कुण्ड बनाएं। आम की अग्नि प्रज्वलित करें। हवन में सर्वप्रथम 'ऊं गं गणपतये नमः' स्वाहा मंत्र से गणेश जी एवं 'ऊं नवग्रह नमः' स्वाहा मंत्र से नवग्रह का हवन करें, तत्पश्चात् सरस्वती माता के मंत्र 'ॐ सरस्वतयै नमः स्वहा' से 108 बार हवन करें। हवन का भभूत माथे पर लगाएं। श्रद्धापूर्वक प्रसाद ग्रहण करें इसके बाद सभी में वितरित करें।

सुवसन्तकः पुष्पधन्वा मदन महोत्सवः

डॉ. नीता चैबीसा

भारतीय मनिषा ने प्रकृति से प्राणीमात्र के अर्न्तसंबंध की सुव्यवस्था सम्पूर्ण बारहमासों को छः ऋतुओं में बांटकर की है।इसी अनुसार हमारी खानपान व लोकरंजनी की पर्वोत्सव को व्याख्यायित कर यह संकेत भी दिया है कि प्राचीन भारतीय समाज शास्त्री महान वैज्ञानिक थे। पंचतत्व से प्रकम्पित शिशिर का लौटना व वसन्त का आगमन न केवल प्रकृति के बदलाव का सूचक है वरन् जीवनचर्या एवं शैली के भी परिवर्तन को इंगित करता है। जाडे की शीत ठिठुरन से सहमी खगपंक्ति नव उड़ाने को व्याकुल होती है तो खेतों में फूली हुई सरसों फूली नही समाती। धरा पीत-हरित वसना हो कर उत्सवधर्मिता की ओर उन्मुख होती है तो मानव मात्र के मन में भी आनन्द प्रस्फुरण करती कल्लोलिनी हर्षोल्लास मनाने को आतुर होने लगती है। लहलहाती जौ की बालियां समीर से बातें करने लगती है तो मेहनतकश किसानों को ठहरा हुआ मन भी जीवन प्रकम्पित शिशिर की प्रताडना से मुक्त होने को मचल उठता है। यही कारण है कि भारत में बंसत ऋतु को ''ऋतुराज'' संबोधन से अभिषिक्त किया गया है।

> भारत में प्राचीनकाल से ही अत्यन्त अनूठी व विलक्षण मनमोहक परम्परा के रुप में मदनोत्सव की सुदीर्घ परम्परा का नामोल्लेख मिलता है जो आज भी कुछ परिवर्तनों के साथ सम्पूर्ण भारत वर्ष में कमोबेश अपना स्थान यथावत बनाए हुए हैं वसंतोत्सव से आरम्भ हुआ यह सिलसिला पूरे दो माह तक अपनी रंगत बिखेरता चलता है और होली उत्सवपर अपना चरमोत्कर्ष प्राप्त करता है। चाहे क्षेत्रिय स्तर पर इसका नाम विविधता लिए हुए हो पर आज भी 'मदनोत्सव' भारतीय जनमानस को झंकृत करता है।

लेखिका शिक्षाविद् एवं साहित्यकार हैं।

ऋतुराज वंसत अपनी कुक्षी में उत्साह, आनन्द और रति का सौर्दय भर दीर्घ लोकोत्सव की परम्परा लेकर भारत को रसाबोर करता है। चाहे वन विहार हो या दोलोत्सव सुन्दर पुष्पो का श्रृंगार हो या फिर मदनोत्सव वंसत, पतझड को मात देकर तृतीय पुरुषार्थ 'काम' का सहचर हो प्राणी मात्र के मन में दस्तक देता है।वसंत में सम्पूर्ण सृष्टि श्रृंगारित होती है। यही कारण है कि वैदिक ऋचाओं से लकर अधुना साहित्य तक चाहे संस्कृत साहित्य हो या देसल भाषा या फिर हिन्दी, सब में वंसत की सदा से ही कवियों, साहित्यकारो और रसिको द्वारा संस्तुति की गई है।

भारत में प्राचीनकाल से ही अत्यन्त अनूठी व विलक्षण मनमोहक परम्परा के रुप में मदनोत्सव की सुदीर्घ परम्परा का नामोल्लेख मिलता है जो आज भी कुछ परिवर्तनों के साथ सम्पूर्ण भारत वर्ष में कमोबेश अपना स्थान यथावत बनाए हुए हैं वसंतोत्सव से आरम्भ हुआ यह सिलसिला पूरे दो माह तक अपनी रंगत बिखेरता चलता है और होली उत्सवपर अपना चरमोत्कर्ष प्राप्त करता है। चाहे क्षेत्रिय स्तर पर इसका नाम विविधता लिए हुए हो पर आज भी 'मदनोत्सव' भारतीय जनमानस को झंकृत करता है। मदनोत्सव प्राचीन भारत की वह गौरवशाली परम्परा है जो किसी न किसी रूप में क्षणिक रूप में आज भी देश के हर क्षेत्र में मौजूद है बस उसका उत्साह और रूप अब वैसा नही रह गया है। सम्पूर्ण उत्तर भारत शीत की जड़ता त्याग कर सक्रियता सजीवता में रुपान्तरित होकर रस से आप्लावित हो 'मदनोत्सव' में मगन होता नजर आता है। बिहार में 'फगुआ' हो या बंगाल का 'दोलोत्सव' पंजाब, हरियाण का 'होला' हो या राजपूताने का 'लूर' या ब्रज का रास हो, सब में मदनोत्सव का रसासिक्त बीज ही समाया है।अनूठे रंगो और उल्लास का पर्व मदनोत्सव वसंत की पंचमी के दिन से शुरु होता है जब मां वाग्देवी शुभ्र वसना भगवती वीणापाणि का प्राकट्योत्सव वसंतोत्सव के रुप में मनाया जाता है। आम्र मंजरियो से सुसज्जीत, रंग अबीर गुलाल की धूप व पीत वर्णी पुष्पो से श्रृंगारित मां शारदा का हिम तुषार सा रंग मानवता को आल्हादित करता विवके से काम के सहचर्य से जीवन की सफलता का संदेश देता हैं। वसन्त की उत्पत्ति की पौराणिक कथा के अनुसार अंधकासुर के वध हेतु दैवीय प्रयोजन के अनुसार कल्याणमय महायोगी शिव से पुत्र प्राप्त करने की आवश्यकता थी परन्तु इसके लिए शिव को कैसे और कौन तैयार करता ? तब ब्रह्माजी की योजनानुसार कामदेव या मदन के कहने पर वंसत को उत्पन्न किया गया था।क्योकि भारतीय शास्त्रीय परम्परा में काम को दैवीय स्वरुप प्रदान किया

गया है अतः समाधिस्थ प्रज्ञायुक्त शिव की क्रोधाग्नि से भस्म काम देव को पत्नि रति देवी के आग्रह पर 'अनंग' रुप में शिव द्वारा जीवनदान दिया बताया गया है। इसका सांकेतिक संदेश भी गहनतम है। जब जब काम विवेकहिन,मर्यादाहिन होता है विनाश को लेकर आता है पर यदि वही काम संयमित अनुशासन की मर्यादा में रहता है वह शिव की विभूति बन जाता है और सृष्टि संचालन का माध्यम भी। अतः भारतीय वाग्ड।मय में अंनग या मदन को विवेक प्रज्ञा द्वारा सुनियन्त्रित करने का संदेश दिया है क्योकि वंसत पंचमी के दिन ही मदन अर्थात काम देव व रति ने प्रथम बार मनुज के हृदय में प्रेमाकर्षण का संचार किया था अतः वंसत पंचमी के दिन को ही वंसतोत्सव के साथ ही मदनोत्सव की शुरुआत का दिन प्राचीन काल से ही माना गया है। प्रज्ञा और विवेक की देवी भगवती वीणा पाणी का प्राकट्य व मदनोत्सव का आगाज एक ही दिन होना अद्भुद व सुंदर संयोजन विवेक से सुनियोजित सहजता से समंजित जान पड़ता है। यही कारण है कि प्राचीन ग्रंथो में वंसत पंचमी को रति रुपा नारियो द्वारा पति की पूजा कामदेव के रुप में कर मदनोत्सव के आगाज का उल्लेख मिलता है।

लोकानुरंजन, आनंद एवं उल्लास के इस पर्व मदनोत्सव को प्राचीन भारतीय साहित्य में कौमुदी महोत्सव, शरदोत्सव, कामदेवोत्सव आदि विविध नामो से संबोधित किया गया है। संस्कृत के प्राचीन ग्रंथो में मदनोत्सव का उल्लेख प्रेम प्रदर्शन के उत्सव के रुप में किया गयसा है।कालीदास ने इसे 'ऋतुउत्सव' का भी नाम दिया है। कालिदास की काव्य यात्रा के प्रथम पडाव 'ऋतुसंहार' में ऋतु निरुपण के साथ-साथ कामिजनों की विलासिता का वर्णन किया गया है। 'ऋतुसंहार' को सबसे बड़ा सर्ग छठा सर्ग है जिसमें अधिकांश पद्यो में

वासंतिक वातावरण से प्रभावित मानव मन का मनोरम वर्णन करते हुए वसंत को मोहक व कामोद्दीपक बताते हुए कवि ने लिखा है -

''द्रुमाः सपुष्पाः सलित सपदंम् स्त्रियः सकायाः पवनः सुगन्धिः।
सुखाः प्रदोषा दिवासाश्च रम्याः सर्व प्रिये। चारुतर वसंते।''

अर्थात् वृक्ष फूलो से लद गये है। जल में कमल खिल उठे है, स्त्रियों के मन में काम जाग उठा है पवन सुगन्ध से भर गया है। इस प्रकार वंसत का काम सखा रुप चहु दिश स्वच्छन्द विचरण करता है तब मदनोत्सव का आगाजअनायास हो जाता स्वाभाविक प्रवृति के रुप में निरुपित है।

कालिदास ने अपने नाटक 'कुमारसम्भव' में मदनोत्सव का विशदवर्णन करते हुए लिखा है कि उस काल में यह मदनोत्सव कई दिनों तक चलता था राजा अपने महल के सबसे ऊंचे स्थान पर बैठ कर इसका आनंद

लेता था। कामदेव के बाणो से आहत सुन्दरियां गुलाब, रंगो से एक दूसरे को रंगते हुए मादक नृत्य करती थी। नगरवासियों के शरीर पर स्वर्णाभूषण व सिर पर अशोक के लाल फूलों के श्रृंगार का वर्णन भी है। युवतियां एवं कुमारिकाएं भी इस मदनोत्सव में जल क्रीड़ा करती यथा - 'श्रृंगक जल प्रहार मुक्त सित्कार मनोहर।' संस्कृति व संस्कृत के महाधनि भवभूति ने भी अपने 'मालती माधव' में भी मदनोत्सव का वर्णन करते हुए लिखा गया है कि इसके केन्द्र में कामदेव का मंदिर होता था सभी स्त्री पुरुष एकत्र होकर फूलहार पहने अबीर, कुमकुम डालते नृत्य संगीत का आयोजन करते। संस्कृत नाट्ककार भास ने अपने नाटक 'चारुदत्त' में मदनोत्सव का रमणीय वर्णन करते हुए गाजेबाजे के साथ कामदेव की शोभायात्रा का उल्लेख किया है। शुद्रक के मृच्छन्कटिकम् मेंवंसतसेना का अपने प्रियतम चारुदत्त से मदनोत्सव की शोभायात्रा के दौराना ही प्रथम परिचय की घटना उल्लेखित है। 'वर्ष क्रिया कौमुदी' व 'धम्मपद' में इसका वर्णन 'महामूर्खो'' का मेला रुप में किया गया है। जिसमें गाना-बजाना,गालियां देना, मदनपूजा,शोभायात्रा व ह्रास परिह्रास व नाच गान का उल्लेख है। ऐसा नही कि मदनोत्सव का अंकन केवल साहित्यिक कृतियों में ही हो वरन् तत्कालीन मूर्तिकला, चित्रकला व स्थापत्य में भी इस कामोत्सव को स्थान दिया गया है। गुवाहाटी के पास मदन कामदेव मंदिर व व कोर्णाक सूर्य मंदिर व खजुराहो का उत्कीर्णन इसका प्रमाण है।

भारत मे प्राचीन समय मे इस माह में मदन महोत्सव को दोलोत्सव के रूप में मनाने के भी प्रमाण मिलते है ।प्राचीन भारतीय शास्त्रों में कालिदास की ही रचना 'मालविकाग्निमित्र' के अंक तीन में विदूषक राजा से कहता है- 'रानी इरावती जी ने वसंत के आरम्भ की सूचना देने वाली रक्ताशोक की कलियों की पहले-

पहल भेंट भेज कर नए वसंतोत्सव के बहाने निवेदन किया है कि आर्यपुत्र के साथ मैं झूला झूलने का आनंद लेना चाहती हूँ ।' 7 वीं शती के कवि दंडी रचित 'दशकुमारचरित' में होली का उल्लेख 'मदनोत्सव' के रूप में किया गया है। इसी काल में हर्ष ने 'रत्नावली' नाटक लिखा । इस के पहले अंक में विदूषक राजा से होली की चर्चा इस प्रकार करता है- 'इस मदनोत्सव की शोभा तो देखिए, युवतियाँ अपने हाथों में पिचकारी ले कर नागर पुरुषों पर रंग डाल रहीं हैं और वे पुरुषगण कौतूहल से नाच रहे हैं। उडाए गए गुलाल से दसों दिशाओं के मुख पीत वर्ण के हो रहे हैं। 'इस प्रकार अबीर, गुलाल,पुष्पो का ही नही फूलों के हिंडोले पर झूला झूलने की परंपरा भी मदन महोत्सव का ही हिस्सा थी जो दोलोत्सव के नाम से आज भी देश के कई हिस्सों में प्रचलित है।राग रंग उल्लास और पुष्पो से गहरे नाते के कारण ही मदन का एक नाम'पुष्पधन्वा' भी है।दाम्पत्य जीवन में मधुरता रहे, परस्पर प्रीति और समर्पण भाव रहे इसके लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि वे दोनों तन-मन से स्वस्थ, सशक्त एवं सक्षम बने रहें और दोनों परस्पर आत्मीयतापूर्ण व्यवहार करें। शारीरिक एवं मानसिक रूप से स्वस्थ रहने हेतु इस ऋतु काल मे मदनोत्सव के दौरान कुछ विशेष जड़ी बूटियों की निश्चित मात्रा ले के 'पुष्पधन्वा रस' तैयार किया जाता था और उसका सेवन भी करने का शास्त्रों में वर्णन मिलता है। ग्रंथो के वर्णानुसार इस दौरान रस सिन्दूर, नाग भस्म, लोह भस्म, अभ्रक भस्म और वंग भस्म- सभी सम भाग। धतूरा, भांग, मुलहठी, सेमल की छाल और नागर बेल के पत्ते- इन पांचों का रसभावना देने के लिए निश्चित मात्रा में रसायन तैयार कर पुष्पधन्वा रस का स्त्री पुरुषों द्वारा सेवन किया जाता था जो उनकी शारिरीक अक्षमताओ को दूर करता था।भारत मे काम को तीसरे पुरुषार्थ के रूप में स्वीकार किया गया है जिसके व्यापक अर्थ है।जीवन मे मदनोत्सव ,दोलोत्सव,व वसन्तोत्सव के माध्यम से इसी तीसरे पुरुषार्थ को साधने के पुरजोर प्रयत्न किए जाते थे।

बंगाल में आज भी होली के अवसर पर दोलोत्सव मनाया जाता है । इस दोलोत्सव का प्राचीन उल्लेख भी भविष्य पुराण के अध्याय 133 में मिलता है ।वसन्त ऋतु में पार्वती शिव जी से कहती है- 'प्रभो ! झूला झूलती हुई इन स्त्रियों को देखिए । इन को देख कर मेरे मन में कौतूहल उत्पन्न हो गया है। अतः मेरे लिए भी एक सुसज्जित हिंडोला बनाने की कृपा करें। त्रिलोचन! इन स्त्रियों की भाँति मैं भी आपके साथ हिंडोला झूलना चाहती हूँ। तब शिव जी ने देवों को बुला कर हिंडोला बनवाया और पार्वती की मनोकामना पूर्ण हुई । इस के बाद हिंडोला बनाने-सजाने और दोलयात्रा की प्रक्रिया का विस्तृत वर्णन है। भविष्य पुराण में दोलोत्सव की तिथि चैत्र शुक्ल चतुर्दशी दी गई है किन्तु आजकल यह उत्सव फाल्गुन पूर्णिमा और चैत्र शुक्ल द्वादशी को मनाया जाता है । इस के अतिरिक्त अध्याय135 में मदन महोत्सव का भी वर्णन है। वस्तुतःआधुनिकता की चकाचौंध में भारतीय समाज में मदनोत्सव विस्मृत-सा होकर रह गया है। मदनोत्सव या दोलोत्सव काम कुंठाओं से मुक्त होने का प्राचीन उत्सव है।पाताल खंड में भी दोलोत्सव या दोलयात्रा का विशद मिलता वर्णन है।इसके अनुसार दोलोत्सव करने के निमित्त चार द्वारोंवाला, वेदिका से युक्त मंडप का निर्माण करे। सुंदर सुगंधित पुष्पों तथा पल्लवों आदि से मंडप को सजाकर उसे चामर, छत्र, ध्वजा आदि से अलंकृत करे। इस मंडप में विविधोपचार पूजन करके स्वर्ण-रत्न-मंडित अथवा पुष्प पत्र आदि से निर्मित डोल में भगवान को झुलाएं। उक्त पौराणिक वर्णन से यह स्पष्ट है कि यह उत्सव अति प्राचीन काल से प्रायः समस्त भारत में प्रचलित था। पहले यह

आधुनिकता की चकाचौंध में भारतीय समाज में मदनोत्सव विस्मृत-सा होकर रह गया है। मदनोत्सव या दोलोत्सव काम कुंठाओं से मुक्त होने का प्राचीन उत्सव है।पाताल खंड में भी दोलोत्सव या दोलयात्रा का विशद मिलता वर्णन है।इसके अनुसार दोलोत्सव करने के निमित्त चार द्वारोंवाला, वेदिका से युक्त मंडप का निर्माण करे। सुंदर सुगंधित पुष्पों तथा पल्लवों आदि से मंडप को सजाकर उसे चामर, छत्र, ध्वजा आदि से अलंकृत करे।

उत्सव पूरे फाल्गुन तथा चैत्र मास में अनेक दिनों तक मदनोत्सव का महत्वपूर्ण भाग होता था। कालांतर में यह संक्षिप्त होता गया। अब यह केवल दो दिनों का रह गया है- फाल्गुन शुक्ला पूर्णिमा आउट चैत्र शुक्ला द्वादशी। इस उत्सव को वसंतोत्सव का अंग माना जा सकता है। पद्मपुराण (पाताल खंड), गरुड़ पुराण, दोलयात्रातत्व तथा श्रीहरिभक्तिविलास में इस उत्सव के विशद विवेचन तथा मतमतांतर उपलब्ध हैं।आज भी तिरुमला में भी दोलोत्सव या 'दोलसेवा' की जाती है।वैष्णव परम्परा में आज भी यह देखने को मिलती है ।वास्तव मेंवसन्त का समय प्राचीन भारत में उत्सवों का काल हुआ करता था। कामसूत्र में इस समय के कई-उत्सवों की चर्चा आती है। इनमें दो बहुत प्रसिद्ध हैं- मदनोत्सव और सुवसन्तक। कामसूत्र के टीकाकार यशोधर ने तो दोनों को एक मान लिया था किंतु अन्य ग्रंथों से स्पष्ट है कि ये दोनों उत्सव अलग-अलग दिनों को मनाए जाते थे। भोजदेव के अनुसार सुवसन्तक वसन्तावतार का उत्सव है-आजकल का वसन्तपंचमी का उत्सव। मदनोत्सव होली के रूप में आज भी पूरे उत्साह के साथ मनाया जाता है। वात्स्यायन के कामसूत्र में भी इसका उल्लेख है।भवभूति के मालती-माधव नामक प्रकरण में एक मदनोत्सव का चित्र है।इससे पता चलता है कि मदनोद्यान- जो विशेष रूप से इस उत्सव के लिए ही बनाया जाता था- इसका मुख्य केन्द्र हुआ करता था। इसमें कामदेव का मंदिर हुआ करता था। इसी उद्यान में नगर के स्त्री-पुरुष एकत्र होकर भगवान कन्दर्प की पूजा करते थे। यहां पर लोग अपनी-अपनी इच्छा के अनुसार फूल चुनते, माला बनाते, अबीर-कुंकुम से क्रीड़ा करते और नृत्य-गीत आदि से मनोविनोद किया करते थे।कुल मिलाकर सुवसन्तक का मदन महोत्सव पुष्पधन्वा का वह आदि पर्व था जो जीवन रस को आप्लावित कर जीवन को सरस् बनाता था ।आज की चकाचौंध भरी जिंदगी में यह उतना तो नही रह गया किन्तु बीज रूप में ही सही अब भी किसी न किसी रूप में भारत मे जीवित है।

हास परिहास और लोक रंजनी की इस प्राचीन भारतीय परंपरा 'मदनोत्सव' अब केवल चंद अशेष बीजों के रूप में ही भारत मे यंत्र तंत्र सर्वत्र बिखरी दिखाई पड़ती है किंतु पूर्णतः जीवंत नही दिखाई पड़ती है।शायद भागती जिंदगी और वक्त की कमी के चलते मंद पड़ते उत्स और जोश को जीवंत करने के हेतु मदनोत्सव को अब पुनः स्थापित करने की आवश्यकता है ताकि भीतर का कोलाहल और अशांति में सृजन का उत्स हो सके और गुबार बाहर निकल सके।इसलिए ऐसा एक प्रयास टैगोर द्वारा शांति निकेतन में स्थापित किय्या गया था ।कांलातर में गुरुदेव रविन्द्रनाथ टैगोर द्वारा मदनोत्सव का आयोजन

शांति निकेतन में प्रतिवर्ष किया जाने लगा जो आज भी परम्परागत रुप में।विद्यमान है। इसमें पीत वस्त्र पहने पीले फूलों के श्रृंगार किये युवतियां हाथ में एक फूलछड़ी लेकर रविन्द्र संगीत की धुन पर एक साथ नृत्य करती है जिसे देखने हजारों की संख्या में देशी-विदेशी पर्यटक आते है।

आज भी पूर्वी भाग में अर्थात् बिहार, बंगाल में भी विधिवत इस परम्परा का पालन किया जाता है। हास-परिहास नाटक, स्वाग, लोकनृत्य,गीतो, रास नृत्य, फूलो का श्रृंगार कर रंग,अबीर,गुलाल मलते हुए थिरकते कदमों से मनोहारी नृत्य करती ये रुपवती इठलाती स्त्रियां निश्चल आनंद का उत्स करती सभी को आल्हादित करती हैं जहां पश्चिमी जगत एक दिन या सप्ताह भर में प्रेम को वेलेन्टाइन के रुप में सिमटा देता है भारत में आज भी प्रेम उन्मुक्त रुप से मदनोत्सव के रुप में वसंतोत्सव से होलिका उत्सव तक रसाप्लावित करता है। हालांकि वर्तमान युग में यह परम्परा लुप्त होती जा रही है या समयाभाव के कारण सम्पूर्ण दो माह न चलकर केवल वसंतोत्सव व होलीका उत्सव तक सिमट कर रह गई प्रतित होती है। समय के साथ-साथ अपना सौदंर्य व मादक उल्लास का स्वरुप बदल गया हैं कई स्थानो पर शालीनता की हदे लांध कर फूहडता में बदलता नजर आता है परन्तु सनातन संस्कृति की धारा का यह लोकानुरंजनी पर्व आज भी प्रचीन भारतीय सांस्कृतिक विरासत में किसी न किसी रुप में रंग में डूबो कर जीवन में उत्साह भरता दृष्टव्य हो ही जाता हैं। खासकर वंसत पंचमी पर वंसत के आगाज एवं होली के हुडदंग व उल्लास में प्राचीन मदनोत्सव के परम्परागत बीज की चरम परिणति देखी जा सकती है।

मदनोत्सव जीवन मे वसंत का उत्स करता और उल्लास का सहचर बन सम्पूर्ण भारत को रसाबोर करता है। प्रेम,माधुर्य,नव ऊर्जा,उत्साह और नव सर्जना का सजीला सुमधुर तरंगित गीत सा लावण्य लिए मदनोत्सव या वसन्तोत्सव की यह प्राचीन भारतीय ऋतु परम्परा वर्तमान की एकसार नीरस और उबाऊ हुई जिंदगी को पुनः पटरी पर लाने की कवायद का एक सोपान है। आइए, इस स्वर्णिम सोपान पर हम हर्षोल्लास से चढ़े ताकि कदमो में और भी अधिक गति आए और जिंदगी सचमुच जीवंत हो सके।

बसंत के शब्दशिल्पी महाप्राण निराला

ऋतुराज वसंत का आगमन हो चुका है। मधुरिमा, सरसता एवं हरीतिमा से सुसज्जित धरा के कण कण में सौन्दर्य प्रस्फुटित हो रहा है। प्राणवंत प्रकृति का लावण्य चतुर्दिक निखर उठा है। वसंत ने सारी सृष्टि में मधुर संगीत भर दिया है। वन-उपवन कोयल की कूक से आह्लादित हो रहे हैं । वसंत ऋतु निराला की धड़कनों में बसती थी। निराला ने 'हिंदी के सुमनों के प्रति पत्र' कविता में लिखा भी है – मैं ही वसन्त का अग्रदूत। वसंत पर निराला ने श्रेष्ठतम गीत लिखे हैं। घनघोर अभावों का सामना करने के बावजूद उनकी चेतना में वसंत की महक विद्यमान रही। अपने अनुपम प्राकृतिक सौंदर्य से सबको सम्मोहित करती वसंत ऋतु के समान ही निराला ने अपनी अनुपम कविताओं से हिंदी साहित्य जगत को सम्मोहित किया।

डा०अरुण कुमार दवे

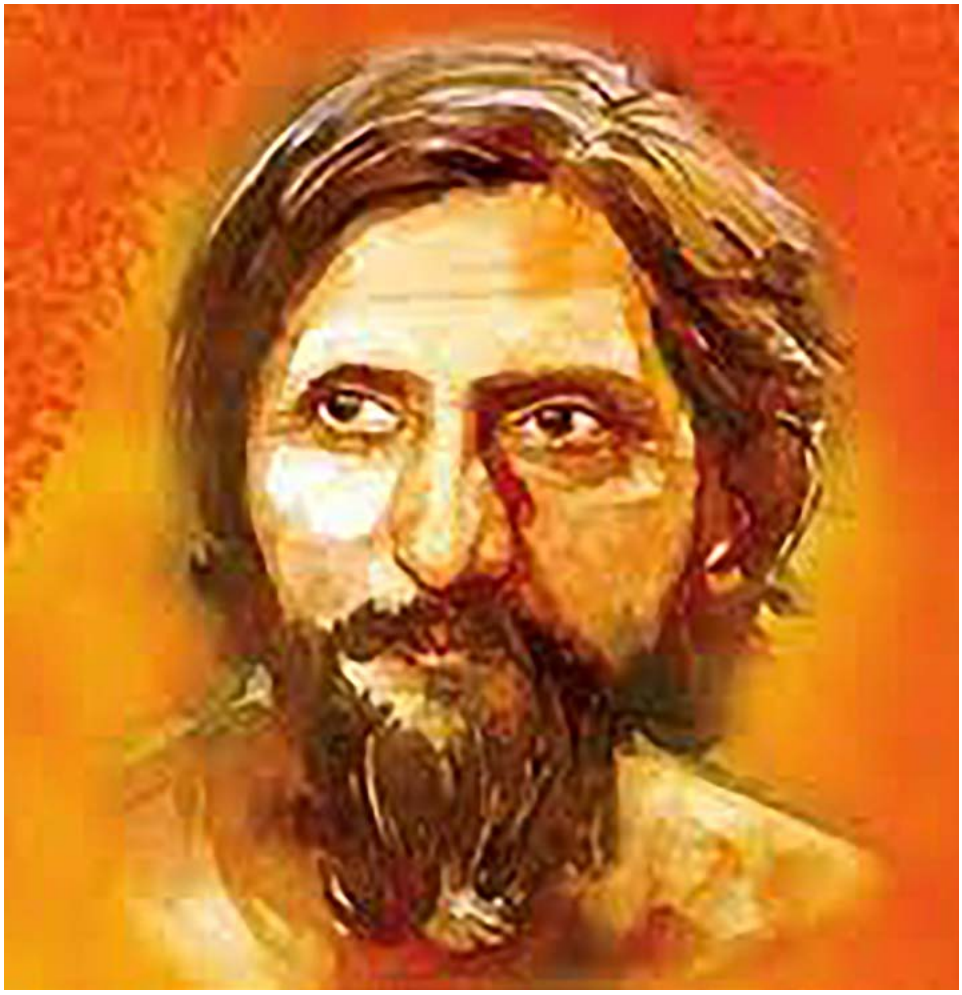

वसंत पंचमी के साथ महाकवि निराला का अप्रतिम लगाव था। वाणी के वरद पुत्र कविवर 'निराला का जन्मदिन भी वसंत पंचमी को ही मनाया जाता है। उनका जन्म वैसे तो माघ शुक्ल एकादशी, संवत् 1955 तदनुसार इक्कीस फरवरी 1899 ई. को हुआ था, लेकिन उन्होंने स्वेच्छा से वसंत पंचमी को अपना जन्म दिन घोषित किया था। सन् 1930 ई. में गंगा पुस्तकमाला के प्रकाशक दुलारे लाल भार्गव ने वसंत पंचमी के दिन गंगा पुस्तकमाला का महोत्सव और अपना जन्मदिन मनाया था ।

वसंत पंचमी के साथ महाकवि निराला का अप्रतिम लगाव था। वाणी के वरद पुत्र कविवर 'निराला का जन्मदिन भी वसंत पंचमी को ही मनाया जाता है। उनका जन्म वैसे तो माघ शुक्ल एकादशी, संवत् 1955 तदनुसार इक्कीस फरवरी 1899 ई. को हुआ था, लेकिन उन्होंने स्वेच्छा से वसंत पंचमी को अपना जन्म दिन घोषित किया था। सन् 1930 ई. में गंगा पुस्तकमाला के प्रकाशक दुलारे लाल भार्गव ने वसंत पंचमी के दिन

गंगा पुस्तकमाला का महोत्सव और अपना जन्मदिन मनाया था । इस अवसर पर निराला ने भी एक निबंध पढ़ा। डॉ.रामविलास शर्मा बताते हैं कि 'उन्होंने देखा कि दुलारेलाल भार्गव वसंत पंचमी को अपना जन्मदिवस मनाते हैं। उन्होंने निश्चय किया कि वह भी वसंत पंचमी को ही पैदा हुए थे। वसंत पंचमी सरस्वती पूजा का दिन, निराला सरस्वती के वरद् ऋतुराज वसंत का आगमन हो चुका है। मधुरिमा, सरसता एवं हरीतिमा से सुसज्जित धरा के कण कण में सौन्दर्य प्रस्फुटित हो रहा है। प्राणवंत प्रकृति का लावण्य चतुर्दिक निखर उठा है। वसंत ने सारी सृष्टि में मधुर संगीत भर दिया है। वन-उपवन कोयल की कूक से आह्लादित हो रहे हैं । वसंत ऋतु निराला की धड़कनों में बसती थी। निराला ने 'हिंदी के सुमनों के प्रति पत्र' कविता में लिखा भी है – मैं ही वसन्त का अग्रदूत। वसंत पर निराला ने श्रेष्ठतम गीत लिखे हैं। घनघोर अभावों का सामना करने के बावजूद उनकी चेतना में वसंत की महक विद्यमान रही। अपने अनुपम प्राकृतिक सौंदर्य से सबको सम्मोहित करती वसंत ऋतु के समान ही निराला ने अपनी अनुपम कविताओं से हिंदी साहित्य जगत को सम्मोहित किया। वसंत पंचमी के साथ महाकवि निराला का अप्रतिम लगाव था। वाणी के वरद पुत्र कविवर 'निराला का जन्मदिन भी वसंत पंचमी को ही मनाया जाता है। उनका जन्म वैसे तो माघ शुक्ल एकादशी, संवत् 1955 तदनुसार इक्कीस फरवरी 1899 ई. को हुआ था, लेकिन उन्होंने स्वेच्छा से वसंत पंचमी को अपना जन्म दिन घोषित किया था। सन् 1930 ई. में गंगा पुस्तकमाला के प्रकाशक दुलारे लाल भार्गव ने वसंत पंचमी के दिन गंगा पुस्तकमाला का महोत्सव और अपना जन्मदिन मनाया था । इस अवसर पर निराला ने भी एक निबंध पढ़ा। डॉ.रामविलास शर्मा बताते हैं कि 'उन्होंने देखा कि दुलारेलाल भार्गव वसंत पंचमी को अपना जन्मदिवस मनाते हैं। उन्होंने निश्चय किया कि वह भी वसंत पंचमी को ही पैदा हुए थे। वसंत पंचमी सरस्वती पूजा का दिन, निराला सरस्वती के वरद् पुत्र, वसंत पंचमी को न पैदा होते तो कब पैदा होते? नामकरण संस्कार से लेकर जन्मदिवस तक निराला ने अपना जन्मपत्र नए सिरे से लिख डाला।' भाग्य के लेख को बदलने की कवि की इस अद्भुत जिद के कारण ही गंगा प्रसाद पांडेय ने 'निराला' को महाप्राण कहा था।

वसंत के जितने मोहक काव्य चित्र निराला ने प्रस्तुत किये हैं उतने शायद ही किसी ने किये हो। वसंत अपने पूरे रंग वैभव के साथ उनके गीतों में नज़र आता है। वसंत में धरती पग पग रंग जाती है, वृक्षों के अंतस की लालिमा निखर जाती है।

'रँग गई पग-पग धन्य धरा –
हुई जग जगमग मनोहरा।
वर्ण गंध धर, मधु-मरन्द भर
तरु उर की अरुणिमा तरुणतर
खुली रूप कलियों में पर भर
स्तर-स्तर सुपरिसरा।

गूँज उठा पिक-पावन पंचम
खग-कुल-कलरव मृदुल मनोरम,
सुख के भय काँपती प्रणय-क्लम
वन श्री चारुतरा।'

सृष्टि के कण-कण में छिपा सौंदर्य वसंत के रंग-बिरंगे फूलों के भीतर प्रस्फुटित हो उठा है। ऐसा लगता है मानो फूलों के चेहरों पर कूची फिरा दी गई हो –

'कूची तुम्हारी फिरी कानन में
फूलों के आनन आनन में
फूटे रंग वासंती, गुलाबी,
लाल पलास, लिए सुख, स्वाबी,
नील, श्वेत शतदल सर के जल,
चमके हैं केशर पंचानन में।'

वसन्त में जब कोयल बोलती है तो उसके स्वर की मादकता हमारी नस नस में घुल जाती है। प्राणों के भीतर अनहदनाद गुंजरित होने लगता है। कवि लिखता है –

कुंज-कुंज कोयल बोली है,
स्वर की मादकता घोली है।
कांपा है घन पल्लव-कानन,
गूँजी गुहा श्रवण-उन्मादन,
तने सहज छादन-आच्छादन,
नस ने रस-वशता तोली है।

स्नेह से सिंचित करने वाली ऋतु है वसन्त। इसके आगमन मात्र से हमारी रगों में उल्लास का संचार होने लगता है। रसोद्रेक का चमत्कारिक प्रभाव प्रकृति में इस प्रकार परिलक्षित होने लगता है –

'फिर बेले में कलियाँ आई।
डालों की अलियाँ मुस्काई।
सींचे बिना रहे जो जीते,
स्फीत हुए सहसा रस पीते
नस-नस दौड़ गई हैं खुशियाँ
नैहर की कलियाँ लहराई।'

कवि जीवन भर अभावों के भीषण दंश झेलता रहा मगर जीवन में बीते कुछ वासंती क्षणों को भूल नहीं पता है। कवि के जीवन में वसन्त की मधुरिमा लेकर पहले तो उनकी सहचरी मनोहरा देवी आई, बाद में लाडली बिटिया सरोज वसंतवत

आई। कवि की ये वासंती स्मृतियाँ 'सरोज-स्मृति' कविता में इस प्रकार अभिव्यक्त हुई है –

'देखा मैंने, वह मूर्ति धीति
मेरे वसंत की प्रथम गीति
श्रृंगार, रहा जो निराकार,
रस कविता में उच्छ्वसित धार
गाया स्वर्गीय प्रिया-संग
भरता प्राणों में राग–रंग,
रति रूप प्राप्त कर रहा वही,
आकाश बदलकर बना मही।'

उनकी अनेक कविताओं में वसन्त की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती का स्तवन किया गया है। सरस्वती की आराधना करके शब्दों को सार्थकता प्रदान करने वाले निराला के अंतर्मन में सरस्वती और वसंत दोनों रमे हुए हैं। वसंत और सरस्वती दोनों ही पल प्रतिपल नवीनता के द्योतक हैं –

नव गति, नव लय, ताल छंद नव
नवल कंठ, नव जलद मंद्र रव,
नव नभ के नव विहग-वृंद को
नव पर नव स्वर दे!'

मां शारदा का वसंत पर अतिशय अनुराग है। वसंत की सुसज्जित माला धारण कर वह वरदायिनी बनती है –

'वरद हुई शारदा जी हमारी
पहनी वसंत की माला सँवारी।'

निराला ने सन् 1920 के आस-पास अपनी साहित्यिक यात्रा शुरू की। वीणावादिनी के इस वरद पुत्र ने 1961 तक अनवरत लिखते हुए अनेक कालजयी रचनाओं से हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया। 'अनामिका, ' 'परिमल', 'गीतिका', 'द्वितीय अनामिका', 'तुलसीदास', 'अणिमा', 'बेला', 'नए पत्ते', 'गीत कुंज, 'आराधना', 'सांध्य काकली', 'अपरा' जैसे काव्य-संग्रहों रचना की। 'अप्सरा', 'अलका', 'प्रभावती', 'निरूपमा', 'कुल्ली भाट' और 'बिल्लेसुर' 'बकरिहा' शीर्षक से उपन्यासों तथा 'लिली', 'चतुरी चमार', 'सुकुल की बीवी', 'सखी' और 'देवी' नामक कहानी संग्रहों का सृजन किया। 'मतवाला' व 'समन्वय' पत्रिकाओं का संपादन भी किया। सौ पदों में लिखी गई तुलसीदास निराला की सबसे बड़ी कविता है।

निराला का साहित्य प्रकृति सौंदर्य, प्रेम के औदात्य, आध्यात्मिकता, राष्ट्रप्रेम, सामाजिक चेतना एवं मानवीय संवेदना से सराबोर है। साहित्य जगत को अपनी अविस्मरणीय रचनाओं से वसंत का अहसास कराने वाले इस महाप्राण कवि का व्यक्तिगत जीवन अभावों एवं कष्टों से भरा रहा मगर बेबाकी एवं फक्कड़पन से भरा यह कवि समझौतापरस्त नहीं बना। ठिठुराती सर्दी में एक असहाय वृद्धा के मुख से बेटा का संबोधन सुनकर अपनी नई रजाई उसे ओढा देने वाला हिन्दी का यह कवि सिंहासन तक को ठोकर मारने का जज्बा रखता था। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के यशस्वी वाइस चांसलर अमरनाथ झा ने एक बार निराला को अंग्रेजी में पत्र लिखकर अपने घर पर काव्य पाठ के लिए निमंत्रित किया। शिक्षा, संस्कृति और प्रशासकीय सेवाओं के क्षेत्र में अमरनाथ झा की तूती बोलती थी। मगर स्वाभिमानी निराला सरीखे कवि को यह गवारा न था कि पद या सम्पन्नता के गुमान में कवि दरबार आयोजित करने वाले प्रभावशाली व्यक्ति के घर हाजरी बजाकर भांडवत काव्यपाठ करें। उन्होंने जवाब भेजा – 'आई एम रिच ऑफ माई पुअर इंग्लिश, आई वाज ऑनर्ड बाई योर इनविटेशन टू रिसाइट माई पोयम्स एट योर हाउस। हाउ एवर मोर आनर्ड आई विल फील इफ यू कम टू माई हाउस टू लिसिन टू माई पोयम्स।' (मैं गरीब अंग्रेजी का धनिक हूँ। आपने मुझे अपने घर आकर कविता सुनाने का निमंत्रण दिया मैं गौरवान्वित हुआ। लेकिन मैं और अधिक गौरव का अनुभव करूँगा यदि आप मेरे घर आकर मेरी कविता सुनें)। 'इसी प्रकार एक बार ओरछा नरेश से अपना परिचय देते हुए निराला ने कहा, 'हम वो हैं जिनके बाप-दादों की पालकी आपके बाप-दादा उठाते थे।' यहाँ कवि परंपरा पर गर्व करने वाले निराला ने उस घटना का संकेत किया था, जब राजा छत्रसाल ने कवि भूषण की पालकी स्वयं उठा ली थी

जीवनपर्यन्त साहित्य–रसिकों को वासन्ती शब्दसुमनों से रसप्लावित करने वाले शब्दशिल्पी निराला के जीवन में मात्र 22 वर्ष की अल्पायु में पत्नी के चिरवियोग से पतझड़ आ गया और उसके बाद बिटिया सरोज के असामायिक निधन से यह पतझड़ स्थाई बन गया। दुर्दांत दुर्भाग्य के प्रबल प्रहारों को झेलते झेलते आखिर शोक संतप्त निराला की मनोदशा व्यथा एवं वेदना से टूट-सी गई और 15 अक्टूबर, 1961 को यह अमर कवि इस लोक से विदा हो गया।

निराला वाकई निराला ही थे उनकी स्मृति आते ही हमारे चित्त में वसंत की सुरभि और सौंदर्य मूर्तिमान हो उठते हैं। हमारा अंतस स्वतः ही गुनगुनाने लगता है–

अभी न होगा मेरा अंत,
अभी–अभी ही तो आया है,
मेरे वन में मृदुल वसंत,
अभी न होगा मेरा अंत

कवियों में संत हों संतों में कवि हों

डॉ. अरुण प्रकाश

हिंदी साहित्य 'त्रिकोण के त्रास' में है। यह त्रिकोण प्रासंगिकता, प्रेताभिव्यक्ति और उधारी का चिंतन है। आज के साहित्य में यह तीनों छुपाए नहीं छुपते। जैसे, झीने सफेद आवरण से तमस नहीं छुपता बल्कि उसकी अभिव्यक्ति आवरण को भी तमस कर देती है, वैसे ही यह प्रकट हैं। यह सब आज के साहित्य का रूप हो सकता हैं, लेकिन उसके शाश्वत चिंतन और अपरिवर्तनीय लेकिन प्रवहमान तत्त्व की प्रतीति नहीं करता।

साधना की तरह ही साहित्य का अवलंब भी अन्तः परीक्षा की संवेदनात्मक अनुभूति है। कवि का सौंदर्य दर्शन ऐंद्रिय प्रतीतियों के शब्द-स्पर्श-रस-रूप-गंधात्मक स्तर पर ही नहीं है। साहित्य का ध्येय अनुभूति की प्रतिक्रिया मात्र नहीं है, न ही यह प्रतिक्रियात्मक अभिव्यक्ति उसकी कसौटी है।

हिंदी का कवि और साहित्यकार शाश्वत चिंतन और तत्त्व से बेसुध हैं। वह सबके मन की दोहराने और आरम्भिक बातें कहकर जन-मन-रञ्जन में ही अपनी सिद्धि खोज रहे हैं। जिन्होंने प्रगतिशीलता का चोला ओढ़ा है वह कभी पाश्चात्य तो कभी कम ज्ञात चिंतन का पुनर्पाठ गाते फिर रहे हैं। इससे वह भीड़ से अलग तो दिख जाते हैं लेकिन उनका भेद खिंचाव काल में खुल जाता है। साहित्य का सबसे बड़ा वर्ग बीते को दोहराने वाला है। यहां बीते युग की बातों को अनेक तरह से कहा जा रहा है। जो विचार और अभ्यास प्रवाह क्रम में छोड़े जा चुके हैं उनको गाकर, स्मृतियों में जीवंत रखकर पाठक को पाशबद्ध किया जा रहा है। पाठक अपने छूंछे छूटे उस जीवन को गाये जाने से प्रसन्न हैं। वंचना के व्याख्यान में अजीब सा नशा है...जो समक्ष की संपन्नता को ही तिरोहित कर सकता है। भावी की कामना को नकार देता है। स्मृतियों को गाना, बीते को दोहराना...यही 'प्रेताभिव्यक्ति' आज के साहित्य की पहचान भी है और पराकाष्ठा भी। यहां किसी अनछुए क्षितिज को छूना तो दूर उसकी तरफ अंगुलि संकेत की संभावना भी नहीं दिखती। अलबत्ता जो बीत गया है उसे बीतने नहीं देना है। अतीत के प्रेत पकड़े रहने हैं। उस परिधि से बाहर नहीं निकलना है। यह तो वैसी ही स्थिति कि घाव निधोले रखे जाएंगे।

इन बिन्दुओं से अवगत होते हुए हमें यह कहने का अधिकार है कि यह साहित्य नहीं, साहित्य का त्रासद है। हमें यह न भी पता हो कि साहित्य की प्राप्ति क्या होनी चाहिए तब भी हमें यह अधिकार है इस 'पर्याय' को असंगीकृत कर सकें। इसे साहित्य न मानने का औचित्य दे सकें। लेकिन यह औचित्य देते ही हम पर एक जिम्मेदारी आती है कि इस त्रासद को तोड़ने का कोई सूत्र सुझायें। और, इसके लिये साहित्य के तत्त्व का विमर्श रखा जाये।

साधना की तरह ही साहित्य का अवलंब भी अन्तः परीक्षा की संवेदनात्मक अनुभूति है। कवि का सौंदर्य दर्शन ऐंद्रिय प्रतीतियों के शब्द-स्पर्श-रस-रूप-गंधात्मक स्तर पर ही नहीं है। साहित्य का ध्येय अनुभूति की प्रतिक्रिया मात्र नहीं है, न ही यह प्रतिक्रियात्मक अभिव्यक्ति उसकी कसौटी है।

हमारी संस्कृति का कवि भी उसी उन्नत शिखर पर खड़ा है, जहां परम्परा में ऋषि खड़े

हैं। ईशोपनिषद् का वचन है 'कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भू'। कवि मनीषी है, परिभू है, स्वयंभू है। वह प्रजापति है। अग्नि पुराण कहता है 'अपारे काव्य संसारे कविरेव प्रजापतिः।' अपार काव्य के संसार में कवि ही प्रजापति है, स्रष्टा है। वह स्रष्टा इसलिए है क्योंकि वह सत्य का द्रष्टा है, मात्र पक्ष विपक्षात्मक पहेलियां बुझाने वाला नहीं, अनुकूल-प्रतिकूल प्रतिक्रिया व्यक्त करने वाला ही नहीं। दर्पण की तरह प्रतिच्छाया मात्र प्रेषित कर देना, जो है, उसके प्रति अपनी प्रतिक्रिया मात्र प्रकट करते जाना, कवि-धर्म नहीं हो सकता। कवि द्रष्टा है, वह कर्ता या भोक्ता नहीं, केवल द्रष्टा है। अर्थात प्रतिक्रियामुक्त। जो कुछ घटित हो रहा है, उसमें किसी प्रकार भी लिप्त नहीं। इसका अर्थ यह नहीं है कि वह जो हो रहा है उससे अनजान व परामुख है। वह उससे अधिक जानता है, जो उसमें लिप्त है। क्योंकि जो जिसमें जितना लिप्त है, वह उस लिप्तता की सीमाओं से आगे तनिक भी नहीं जान पाता, किन्तु द्रष्टा उसके पार भी जानता है, सम्पूर्ण को जानता है। क्योंकि वह कहीं उसमें डूबा हुआ नहीं है, बंधा हुआ नहीं है, किसी भी प्रकार की क्रिया-प्रतिक्रिया के दुनिवार जाल में उलझा हुआ नहीं है। तभी तो वह द्रष्टा है।

इससे यह तो स्पष्ट है कि मात्र प्रतिक्रिया को अभिव्यक्ति देना कविता का लक्ष्य भी नहीं है। काव्य है, अपने में मौलिक सर्जन। मैं समझता हूं कि मौलिकता की दो आवश्यक शर्ते हैं वह आह्वान व प्रेरणा से मुक्त हों। इस तरह मौलिक सर्जन की क्षमता केवल उसी में संभव है जो यथार्थ का द्रष्टा है, दृश्य से प्रतिबद्ध नहीं। सर्वथा बिलग पड़ा है दृष्टव्य से। प्रतिक्रियात्मक भावना से सर्वथा मुक्त है। इतिहास साक्षी है कि भारतीय मेधा ने उसी साहित्य या काव्य को सर्वोपरि प्रतिष्ठा दी जो संकल्प-विकल्पात्मक प्रतिक्रियाओं में नहीं बहा, युगीन स्थितियों को प्रतिबिम्बित करना मात्र जिसे अभीष्ट नहीं रहा, अपितु जिसने जीवन के चिरन्तन मूल्यों को अभिव्यक्ति दी। इसमें वेद, उपनिषद, आगम, त्रिपिटक और सन्तवाणी की प्राप्य प्रतिष्ठा आज भी जन-जीवन में सम्पूर्ण प्रखरता के साथ है। समसामयिक घटनाओं के आलेखन को भारतीय पुराण-साहित्य के रूप में मान्यता अवश्य मिली है किन्तु काव्य की उदात्त गरिमा का संस्पर्श उसे नहीं मिल पाया। निःसन्देह काव्य अपने युगीन यथार्थ को साकार करता है, अपने युग के लोकमानस को अभिव्यक्ति भी देता है, समसामयिक समस्याओं को प्रखर वाणी भी देता है, उनसे आंख नहीं मूंदता। किन्तु यदि इसे ही काव्य की कसौटी मान लिया जाय तो उस पर

साहित्य मात्र दर्पण नहीं, साहित्य मात्र घटनाओं की वर्णनात्मक व्यंजना नहीं, मात्र इतिहास नहीं, आदमी क्या है, इसका चिंतन करना ही नहीं, अपितु इससे बहुत आगे जीवन के अछूते अनंत क्षितिजों की ओर अंगुलि निर्देश भी साहित्यकार का अनिवार्य धर्म है। भोगे हुए यथार्थ के साथ अभोगी कामनाओं की ओर होने वाला संकेत भी मानव के लिए कम महत्वपूर्ण नहीं। उन अभोगी कामनाओं को मात्र वायवीय आदर्श कहकर नकारा नहीं जा सकता, क्योंकि कल की हर वायवीय कल्पना आज इतना ठोस यथार्थ का धरातल ग्रहण कर रही है कि भविष्य प्रतिपल अतीत बनता जा रहा है और अनन्त संभावनाएं मनुष्य को दस्तक दे देकर पुकार रही हैं। कल की हर कल्पना आज का यथार्थ बन रही है, आज का यथार्थ कल इतिहास बन जायेगा। इसलिए केवल कल्पना या भोगे हुए यथार्थ के नाम पर काव्य की इयत्ता का निर्धारण न्याय संगत नहीं होगा। इसका अर्थ यह नहीं है कि हम निरे आदर्श या कर्तव्यमूलक उपदेश को काव्य में ठूंस दें। किन्तु इसका अर्थ इतना अवश्य है कि हम अपनी दृष्टि और उसके दृष्टव्य से ऊपर उठकर कुछ सर्जन करें।

वेद और उपनिषद, आगम और त्रिपिटक

“साहित्य मात्र दर्पण नहीं, साहित्य मात्र घटनाओं की वर्णनात्मक व्यंजना नहीं, मात्र इतिहास नहीं, आदमी क्या है, इसका चिंतन करना ही नहीं, अपितु इससे बहुत आगे जीवन के अछूते अनंत क्षितिजों की ओर अंगुलि निर्देश भी साहित्यकार का अनिवार्य धर्म है। भोगे हुए यथार्थ के साथ अभोगी कामनाओं की ओर होने वाला संकेत भी मानव के लिए कम महत्वपूर्ण नहीं। उन अभोगी कामनाओं को मात्र वायवीय आदर्श कहकर नकारा नहीं जा सकता, क्योंकि कल की हर वायवीय कल्पना आज इतना ठोस यथार्थ का धरातल ग्रहण कर रही है कि भविष्य प्रतिपल अतीत बनता जा रहा है और अनन्त संभावनाएं मनुष्य को दस्तक दे देकर पुकार रही हैं।”

अथवा मध्य युगीन संतों की वाणी आज भी जिन्दा क्यों है? हजारों वर्ष पूर्व रचित पेड़ की छालों पर अथवा चमड़े के पट्टों पर या पकी हुई ईटों पर खुदे काव्य ग्रन्थों का महत्व आज भी क्यों है? महज इसलिए नहीं कि वे समसामयिक संदर्भ पर प्रकाश डालते हैं, या अपने से बीता दोहराते हैं बल्कि इसलिए कि वे मानवीय मूल्यों का चिरन्तन प्रकाश जन-जीवन तक पहुंचाते हैं। होमर का 'इलियड' दांते का 'डिवाइना कामेडिया', मिल्टन का 'पेराडाइज लास्ट' आज भी उतने ही तरोताजा और स्फूर्तिमान हैं जितने वे अपने रचनाकाल में थे। शेक्सपीयर के नाटकों में बासीपन जाना तो बहुत दूर, लगता है सूरज की किरण को छुवन से जैसे अभी-अभी कोई ताजा कली खिली हो, उसका एकमात्र कारण यही है कि इनके कवि ने मात्र दर्पण बनना स्वीकार नहीं किया। बर्नार्ड शा ने इसी बात पर शेक्सपीयर की कटु आलोचना भी की थी कि उसने अपने नाटकों में सम-सामयिक यथार्थ का चित्रण करने पर बल नहीं दिया है, अपने युग की समस्याओं का चित्रण नहीं किया है। इसका उत्तर दिया था, रूस के प्रख्यात साहित्यकार व चिन्तक मनीषी लेफ तोलोस्तोय ने। उन्होंने कहा मानवजाति के विकास की महायात्रा में एक ऐसा युग आने वाला है जबकि बर्नार्ड शा ने अपने नाटकों में अपने युग की जिन समस्याओं के बारे में लिखा है, उनका अस्तित्व भी नहीं रहेगा। तब बर्नार्ड शा के नाटकों की प्रयोजनीयता समाप्त हो जायेगी और लोग उन्हें भूल जायेंगे। लेकिन, शेक्सपीयर के नाटक उस युग में भी बड़े चाव से पढ़े जायेंगे। क्योंकि उसने मानवीय चरित्र के शाश्वत मूल्यों को अपनी कृतियों में अत्यन्त प्रखरता से उठाया है और एक ऐसी विधायक दृष्टि दी है, जिसकी जरूरत आदमी को हर देश काल में रही है।

वर्तमान काव्य-धारा में भोगे हुए यथार्थ, युग-संत्रास और परिवेशमत कुण्ठाओं के अधिक चर्चे हैं, क्या हमारी कविता की अंतिम प्रयोजनीयता यही है? हमें न यथार्थ से आंख मूंदना है और न ही भौतिक मानिसक स्तरों पर कटना है अपने-आपसे, स्वप्निल वायवीय आदर्श कल्पनाओं में ये दोनों ही क्रिया-प्रतिक्रियाओं के दुनिवार नियमों से संचालित मनःस्थितियां ही हैं।

कविता क्रिया है, प्रतिक्रिया नहीं। संवेदना है, स्थूल स्तरों पर जीना भोगना नहीं, हजारों सम्बन्ध संवेगों के बावजूद जो अनभिव्यक्त है, उसकी अभिव्यंजना है, हजारों छटपटाहटों के बीच भी जो घुट रहा, उसे पाना है और उसके अनुरूप एक स्वस्थ भावभूमि को तैयार करना है। अनेकानेक उदाहरण यह स्वयं सिद्ध करते रहते हैं कि जीवन और जगत के प्रति उदात्त प्रवृत्तिमूलना पर भी भारतीय अध्यात्म के पास काव्य के क्षेत्र में जनजीवन को देने योग्य अभी भी बहुत कुछ है जो भारतीय कवियों की लेखनी से सर्वथा अनछुआ है-

अनाघ्रातं पुष्पं किसलय मलूनं कररु हैः
कितने ही अनसूंघे पुष्प हैं,
कितने ही अनछुए पत्ते हैं।

कविता दशर्न है जीवन का, दशर्न की शुद्धता निर्भर होती है निष्पक्ष दृष्टि पर। निष्पक्ष दृष्टि का उदय तटस्थ द्रष्टाभाव की गंगोत्री से ही संभव है। इसीलिए वही दृष्टि समुज्ज्वल बन सकी जो पक्षपात से सर्वथा मुक्त हो सके। पक्षपात कोरों के साथ तो हो ही नहीं सकता, अपने साथ भी - नहीं। भीतर यदि कोई पक्ष है तो इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता कि वह आत्मगत है या वस्तुगत इस भाव भूमि का निर्माण समत्व को साधना पर ही हो सकता है इसलिए भारतीय चिंतन ने काव्य-रचना को भी साधना के साथ जोड़ा जाए और कवि को परिभू, स्वयंभू एवं प्रजापति की भूमिका पर समाचीन किया जाए। इस चिंतन सन्दर्भ में आज जो साधना और कविता को अलग-थलग कर दिया गया है, वह विशेष रूप से मननीय है। मुझे लगता है, साधना और साहित्य के मध्य इस अन्तर्विरोध का प्रमुख कारण है धर्म का जीवन और जगत के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण। हालांकि, प्रारम्भ में ऐसा रहा हो, यह नहीं लगता। भारत की आध्यात्म परम्परा ने संगच्छध्वं संवदध्वं सं ओ मनांसि जानताम् का स्वर मुखरित किया और समाज से दूर भाग कर पर्वतकन्दराओं और हिम-गुफाओं में आंखें मूंद कर जीवन व्यतीत कर देना साधना के लिए कभी आवश्यक नहीं माना। किन्तु, साधना की यह सामुदायिक परिकल्पना आगे जाकर नहीं निभ सकी। धीरे-धीरे संन्यास समाज से कटता गया और वह समय भी आया जबकि धर्म समाज-निरपेक्ष ही नहीं बना, समाज-परामुख भी बन गया, कविता और साधना के मध्य आज जो धारणामूलक विरोधाभास हो रहा है, उसका टूटना बहुत जरूरी है।

आचार्य रूपचंद्र जी कहते हैं कि कवियों में संत हों और संतों में कवि हों। तभी काव्य-जगत की त्रासदी टूट सकेगी तथा जीवन और जगत के प्रति कुछ स्वस्थ मूल्यों की प्रतिष्ठा हो सकेगी। तभी, साहित्य जिंदा रह सकेंगे जब जिनके अन्तःकरण में जीवन के प्रकाश की धारा सबके प्रति समान रूप से प्रवाहित होती रहेगी। यह संत दृष्टि के साहित्यकारों से ही संभव है।

नामलिंगानुशासन

आधुनिक परिवेश में नई शब्द व्याख्या

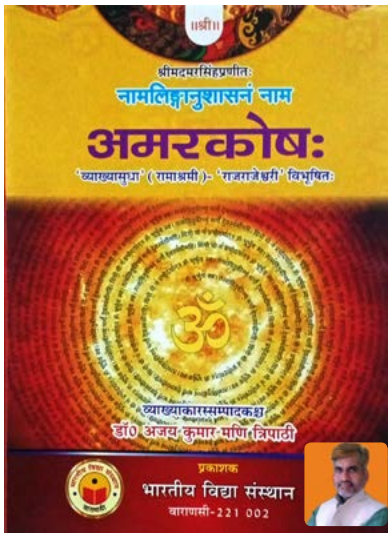

यह कितना सुखद होगा जब श्रुति, स्मृति, उपनिषद और पुराणों में प्रयुक्त संस्कृत शब्दों की सरल हिंदी व्याख्या सामने आ जाय। यह निश्चय ही संस्कृत भाषा से भी ज्यादा हिंदी के लिए एक उपहार जैसा है। आश्चर्य की बात नहीं, क्योकि ऐसा ग्रंथ तैयार हो गया है। यह महती कार्य किया है डॉ अजय कुमार मणि त्रिपाठी ने। इसका प्रकाशन भारतीय विद्या संस्थान, वाराणसी से किया जा रहा है। यह युगानुकूल, युगधर्म स्वरूप भाषा का ऐसा कार्य है जिसकी आवश्यकता पिछली शताब्दी से ही निरंतर महसूस की जा रही थी। मूल संस्कृत ग्रंथों के अध्ययन को अत्यंत सरल बनाने के लिए किए गए इस कार्य को केवल शब्दों में व्यक्त करना कठिन है। यहां यह समझ लेना बहुत जरूरी है कि यह नामलिंगानुशासन अथवा अमरकोष है क्या, और क्यों यह इतना महत्वपूर्ण है। इसके लिए 2 सौ वर्ष पीछे जाना पड़ेगा और तत्कालीन भारत की शिक्षा पद्धति को समझना होगा। अमरकोष प्रथम शती विक्रमी के महान् विद्वान् अमर सिंह का संस्कृत के कोशों में प्रसिद्ध और लोकप्रिय कोषग्रंथ है। अन्य संस्कृत कोषों की भाँति अमरकोष भी छंदोबद्ध रचना है। इसका कारण यह है कि भारत के प्राचीन पंडित 'पुस्तकस्था' विद्या को कम महत्व देते थे, उनके लिए कोष का उचित उपयोग वही विद्वान् कर पाता है जिसे वह कंठस्थ हो। श्लोक शीघ्र कंठस्थ हो जाते हैं। इसलिए संस्कृत के सभी मध्यकालीन कोष पद्य में हैं।अमरकोष में उपनिषद के विषय में कहा गया है- उपनिषद शब्द धर्म के गूढ़ रहस्यों को जानने के लिए प्रयुक्त होता है। इतालीय पंडित पावोलीनी ने सत्तर वर्ष पहले यह सिद्ध किया था कि संस्कृत के ये कोष कवियों के लिए महत्वपूर्ण तथा काम में कम आनेवाले शब्दों के संग्रह हैं। अमरकोष ऐसा ही एक कोष है। अमरकोष का वास्तविक नाम अमर सिंह के अनुसार नामलिंगानुशासन है, नाम का अर्थ यहाँ संज्ञा शब्द है। अमरकोष में संज्ञा और उसके लिंगभेद का अनुशासन या शिक्षा है। अव्यय भी दिए गए हैं, किंतु धातु नहीं हैं। धातुओं के कोष भिन्न होते थे। हलायुध ने अपना कोष लिखने का प्रयोजन कविकंठविभूषणार्थम् बताया है। धनंजय ने अपने कोष के विषय में लिखा है - "मैं इसे कवियों के लाभ के लिए लिख रहा हूं", (कवीनां हितकाम्यया), अमर सिंह इस विषय पर मौन हैं, किंतु उनका उद्देश्य भी यही रहा होगा। अमरकोष में साधारण संस्कृत शब्दों के साथ-साथ असाधारण नामों की भरमार है। आरंभ ही देखिए- देवताओं के नामों में 'लेखा' शब्द का प्रयोग अमरसिंह ने कहाँ देखा, पता नहीं। ऐसे भारी भरकम और नाममात्र के लिए प्रयोग में आए शब्द इस कोश में संगृहीत हैं, जैसे- देवद्र्यंग या विश्वद्र्यंग।

कठिन, दुर्लभ और विचित्र शब्द ढूँढ़-ढूँढ़कर रखना कोषकारों का एक कर्तव्य माना जाता था। नमस्या (नमाज या प्रार्थना) ऋग्वेद का शब्द है। द्विवचन में नासत्या, ऐसा ही शब्द है। मध्यकाल के इन कोषों में, उस समय प्राकृत शब्द भी संस्कृत समझकर रख दिए गए हैं। मध्यकाल के इन कोषों में, उस समय प्राकृत शब्दों के अत्यधिक प्रयोग के कारण, कई प्राकृत शब्द संस्कृत माने गए हैं; जैसे-छुरिक, ढक्का, गर्गरी, डुलि, आदि। बौद्ध-विकृत-संस्कृत का प्रभाव भी स्पष्ट है जैसे- बुद्ध का एक नामपर्याय अर्कबंधु। बौद्ध-विकृत-संस्कृत में बताया गया है कि अर्कबंधु नाम भी कोष में दे दिया। बुद्ध के 'सुगत' आदि अन्य नामपर्याय ऐसे ही हैं। इस कोश में प्रायः दस हजार नाम हैं, जहाँ मेदिनी में केवल साढ़े चार हजार और हलायुध में आठ हजार हैं। इसी कारण पंडितों ने इसका आदर किया और इसकी लोकप्रियता बढ़ती गई। अब डॉ अजय कुमार मणि त्रिपाठी की व्यख्या और उनके द्वारा संपादित अमरकोष प्रकाश में आ रहा है। यह निश्चित रूप से इस सदी में भाषा और शब्द की दुनिया की यह अबतक की सबसे बड़ी घटना है। व्यख्यासुधा, रामाश्रमी, राजराजेश्वरी विभूषित नामलिंगानुशासन अमरकोष का यह प्रकाशन प्राचीन भारतीय साहित्य को पढ़ने, समझने और उसकी व्याख्या प्रस्तुत करने में एक सामान्य हिंदी भाषी व्यक्ति के लिए भी सबकुछ सरल बना देगा। संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, श्री काशी विश्वनाथ न्यास परिषद के विद्वानों के साथ ही काशी एवं भारत के अन्य अनेक विद्वानों के सहयोग और दिशानिर्देशन में तैयार किये गए इस ग्रंथ के कुल 892 पृष्ठ भारत की भाषिक क्षमता और संप्रेषणीय मनोभाव को विश्वपटल पर प्रस्तुत करने के लिए तैयार हैं। इस ग्रंथ के पुरोवाक में संपादक और व्याख्याकार ने स्पष्ट भी कर दिया है कि साहित्य में कोषों का प्राकट्य उतना ही प्राचीन है जितने प्राचीन उनसे संबंधित वांग्मय हैं। विश्व के सभी वांगमयों में सर्वाधिक प्राचीन संस्कृत है जिसका आरंभिक स्वरूप वेद अर्थात श्रुति स्वरूप उद्घाटित होता है।

काव्यांगन

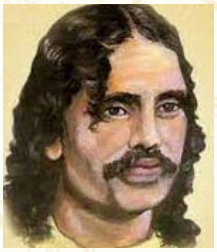

भारतेंदु हरिश्चंद्र

होली

कैसी होरी खिलाई।
आग तन-मन में लगाई॥
पानी की बूँदी से पिंड प्रकट कियो
सुंदर रूप बनाई।
पेट अधम के कारन मोहन
घर-घर नाच नचाई॥
तबौ नहिं हबस बुझाई।
भूँजी भाँग नहीं घर भीतर,
का पहिनी का खाई।
टिकस पिया मोरी लाज का रखल्यो,
ऐसे बनो न कसाई॥
तुम्हें कैसर दोहाई।
कर जोरत हौं बिनती करत हूँ
छाँड़ो टिकस कन्हाई।
आन लगी ऐसे फाग के ऊपर
भूखन जान गँवाई॥
तुन्हें कछु लाज न आई।

(भारतेन्दु जी की रचना 'मुशायरा' से)

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

मैं जीर्ण-साज बहु छिद्र आज,
तुम सुदल सुरंग सुवास सुमन,
मैं हूँ केवल पतदल-आसन,
तुम सहज बिराजे महाराज।

ईर्ष्या कुछ नहीं मुझे, यद्यपि
मैं ही वसन्त का अग्रदूत,
ब्राह्मण-समाज में ज्यों अछूत
मैं रहा आज यदि पार्श्वच्छबि।

तुम मध्य भाग के, महाभाग !
तरु के उर के गौरव प्रशस्त !
मैं पढ़ा जा चुका पत्र, न्यस्त,
तुम अलि के नव रस-रंग-राग।

देखो, पर, क्या पाते तुम 'फल'
देगा जो भिन्न स्वाद रस भर,
कर पार तुम्हारा भी अन्तर
निकलेगा जो तरु का सम्बल।

फल सर्वश्रेष्ठ नायाब चीज
या तुम बाँधकर रँगा धागा,
फल के भी उर का कटु त्यागा;
मेरा आलोचक एक बीज।

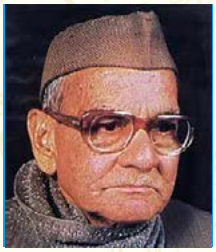

द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी

आया लेकर नव साज री !

मह-मह-मह डाली महक रही
कुहु-कुहु-कुहु कोयल कुहुक रही
संदेश मधुर जगती को वह
देती वसंत का आज री!
माँ! यह वसंत ऋतुराज री!

गुन-गुन-गुन भौंरे गूंज रहे
सुमनों-सुमनों पर घूम रहे
अपने मधु गुंजन से कहते
छाया वसंत का राज री!
माँ! यह वसंत ऋतुराज री!

मृदु मंद समीरण सर-सर-सर
बहता रहता सुरभित होकर
करता शीतल जगती का तल
अपने स्पर्शों से आज री!
माँ! यह वसंत ऋतुराज री!

फूली सरसों पीली-पीली
रवि रश्मि स्वर्ण सी चमकीली
गिर कर उन पर खेतों में भी
भरती सुवर्ण का साज री!
मा! यह वसंत ऋतुराज री!

माँ! प्रकृति वस्त्र पीले पहिने
आई इसका स्वागत करने
मैं पहिन वसंती वस्त्र फिरूं
कहती आई ऋतुराज री!
माँ! यह वसंत ऋतुराज री!

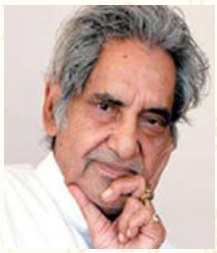

गोपाल दास नीरज

आज बसंत की रात,
गमन की बात न करना!

धूप बिछाए फूल-बिछौना,
बगिया पहने चांदी-सोना,
कलियां फेंके जादू-टोना,
महक उठे सब पात,
हवन की बात न करना!
आज बसंत की रात,
गमन की बात न करना!

बौराई अंबवा की डाली,
गदराई गेहूं की बाली,
सरसों खड़ी बजाए ताली,
झूम रहे जल-पात,
शयन की बात न करना!
आज बसंत की रात,
गमन की बात न करना।

खिड़की खोल चंद्रमा झांके,
चुनरी खींच सितारे टांके,
मन करे तो शोर मचाके,
कोयलिया अनखात,
गहन की बात न करना!
आज बसंत की रात,
गमन की बात न करना।
नींदिया बैरिन सुधि बिसराई,
सेज निगोड़ी करे ढिठाई,
तान मारे सौत जुन्हाई,
रह-रह प्राण पिरात,
चुभन की बात न करना!
आज बसंत की रात,
गमन की बात न करना।

यह पीली चूनर, यह चादर,
यह सुंदर छवि, यह रस-गागर,
जनम-मरण की यह रज-कांवर,
सब भू की सौंगात,
गगन की बात न करना!
आज बसंत की रात,
गमन की बात न करना।

कुँवर बेचैन

बहुत दिनों के बाद खिड़कियाँ खोली हैं
ओ वासंती पवन हमारे घर आना!
जड़े हुए थे ताले सारे कमरों में
धूल भरे थे आले सारे कमरों में
उलझन और तनावों के रेशों वाले
पुरे हुए थे जले सारे कमरों में
बहुत दिनों के बाद साँकलें डोली हैं
ओ वासंती पवन हमारे घर आना!
एक थकन-सी थी नव भाव तरंगों में
मौन उदासी थी वाचाल उमंगों में
लेकिन आज समर्पण की भाषा वाले
मोहक-मोहक, प्यारे-प्यारे रंगों में
बहुत दिनों के बाद खुशबुएँ घोली हैं
ओ वासंती पवन हमारे घर आना!
पतझर ही पतझर था मन के मधुबन में
गहरा सन्नाटा-सा था अंतर्मन में
लेकिन अब गीतों की स्वच्छ मुंडेरी पर
चिंतन की छत पर, भावों के आँगन में
बहुत दिनों के बाद चिरैया बोली है
ओ वासंती पवन हमारे घर आना!

हरिवंशराय बच्चन

तुम अपने रँग में रँग लो तो होली है।
देखी मैंने बहुत दिनों तक
दुनिया की रंगीनी,
किंतु रही कोरी की कोरी
मेरी चादर झीनी,
तन के तार छूए बहुतों ने
मन का तार न भीगा,
तुम अपने रँग में रँग लो तो होली है।
अंबर ने ओढ़ी है तन पर
चादर नीली-नीली,
हरित धरित्री के आँगन में
सरसों पीली-पीली,
सिंदूरी मंजरियों से है
अंबा शीश सजाए,
रोलीमय संध्या ऊषा की चोली है।
तुम अपने रँग में रँग लो तो होली है।

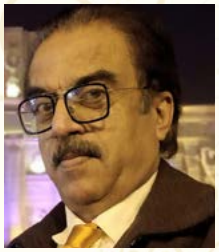

राजेश राज

वीणा वादिनी मातु शारदे

वीणा वादिनी मातु शारदे,
मेरे मन को झंकृत कर दे।
तू अपने प्रकाश से मेरा,
अंतर्मन आलोकित कर दे।

तेरे श्वेत वसन सा मन हो।
हृदय हमारा कमलासन हो।
हे कल्याणी मातु भवानी,
मुझको आज यही एक वर दे।
वीणा वादिनी...
कर में वीणा पुस्तक धारिणी।
हे जगदंबे दुःख निवारिणी।
अपने सरल हृदय भक्तों को,
कीर्तिमान धरती अंबर दे।
वीणावादिनी...

मन में नूतन भाव मुझे दे।
करुणायुक्त स्वभाव मुझे दे ।
मेरे लेखन को नव गति दे,
मेरी वाणी को नव स्वर दे।
वीणावादिनी...

हम आए मां शरण तिहारे।
अहंकार को मिटा हमारे।
कभी अंधेरे में ना भटकें,
मन को पूरनमासी कर दे।
वीणावादिनी...

होलियाना ग़ज़ल

अब के रंग हमारे संग
खेलने आना होली में ।
शर्त लगा लो तुम्हें बना
देंगे दीवाना होली में।

बार-बार वह आकर मुझसे
मेरा पता पूछता था ।
नाम बताया तब उसने
मुझको पहचाना होली में।

अपना रंग चढ़ा दूँ उन पर,
दिल में एक तमन्ना थी।
नामुमकिन को सच करने का
मिला बहाना होली में ।

चंद लोग ऐसी बातें ऐसी
हरकत कर जाते हैं।
लगे किसी ने खोल दिया है,
पागलखाना होली में।

छुईमुई सी वो शरमाई,
गाल गुलाबी हो बैठे।
रंग हाथ मिलते हैं कैसे,
यह भी जाना होली में।

चिहुँक पड़ा वह, बोला भाभी
मैं तो तेरा देवर हूँ।
उसे देख कर जब वह बोली
'ना ना ना ना' होली में।

मैं हो गया लापता, ऐसा
उनका रंग चढ़ा मुझ पर।
घर लौटा तो पत्नी ने भी
ना पहचाना होली में।

दयानंद पांडेय

ग़ज़ल

देह में संगीत बजता है
मनुहार का तुम कहां हो
फागुन धड़कता देह की हर
पोर में तुम कहां हो

एक तितली है एक कोयल
की आहट और एक मैं
आम्र मंजरियों में आ गई है
सुगंध बहुत तुम कहां हो

एक पतंग उड़ती फिर रही
है प्यार के आकाश में
बहकते वसंत के इस मादक
प्रहर में तुम कहां हो

सरसों के पीले फूल
खिलखिलाते हैं बाग़ वाले
खेत में
ताल में तैरती कूदती
उछलती मछलियां हैं तुम
कहां हो

मन की दूब पर बिछी है
ओस की चादर
सूखी नहरों में आ गया है
पानी तुम कहां हो

सम्मत भी गड़ गई है गांव
में हर बार की तरह
गांव की हर गली में फाग
की आग है तुम कहां हो

डोलता मन है हवाओं में
सिहरन महकती धरती
प्यार का सागर मचलता
फिरता है तुम कहां हो

डॉ. संध्या राठौर

सुन ओ जशोदा नंदन

सुन ओ जशोदा नंदन, कान्हा!
आज हमें न रंग लगाना।
रंग रंग जो देह पे बिखरे
सखियाँ देख फिर देंगी ताना।

सुनो लो मोरी यशोदा मैया !
इस राधा की राम दुहाई,
तेरे किसना ने ग्वालो के संग
नीली पीली मेरी चुनरी भिगाई

सुनी न मेरी, मोहे रंग दिनो
देत रह गई मैं तो दुहाई
मैं भी फिर हुई ऐसी बावरी
रंग गई तुझ में,
सुध बुध बिसराई

दांव लगाया मैंने खुद का
हारी खुद को तुम को जीती
जब देखूं बस कान्हा को देखूं
हृदय में हो बस तुमरी ही प्रीति

राधा रंग है जो उजला उजला
इसपे श्याम रंग अब तुम डारो
प्रेम रंग में मोहे डुबोकर
भवसागर से इस राधा को तारो

प्रज्ञा विनोदिनी

सर्द हवाओं के डर से,
जकड़ी हुई खिड़कियाँ।
शीत से ठिठुरती हुई,
शाखों पर पत्तियाँ।
अठखेली करती हुई,
धूप से बदलियाँ।

दहकते हुए पलाश ने ,
फिर से गीत गाया है।
सुनो! वसन्त आया है।
शिशिर से ग्रीष्म को,
जोड़ता पुल-वसन्त।

प्रकृति को वासंती परिधान,
पहनाता वसन्त।
रक्तिम कपोलों सा,
शरमाता है वसन्त।

गेहूँ की सुनहली,
सुघड़ बालियों ने,
वसुधा को स्वर्णाहार पहनाया है।
सुनो! वसन्त आया है।

पीर पुरानी जैसे ,
उर में कोई हूक सी,
बागों में गूँजती,
कोयल की कूक सी।
अमराइयों पर मादक सी ,
मन मोहक गंध लिए,
फिर से बौर छाया है।
सुनो ! वसंत आया है।

फागुन के रंग लिए,
महुए की गंध लिए,
नीला अम्बर ओढ़े,
पीली सरसों का,
मनभावन पट पहने,
धरा लहराती है ।
नव पल्लव, नव कोंपल ने,
स्वागत द्वार सजाया है।
सुनो! वसन्त आया है।

कलियों पर नवयौवन,
धूप का रेशमीपन,
बासंती हवाओं का,
झोंका सहलाता तन।
तारों से टंके हुए,
स्वच्छ, स्वप्निल आसमां से,
तुमको मेरे हिय ने,
संदेशा भिजवाया है।
सुनो ! वसंत आया है।

आशा पाण्डेय ओझा

(1)

गेंदा झूले आँगने, खेतों बीच पलाश।
मारग पी का देखती, आँखे हुई हताश।

फूल-फूल पुलकित हुआ, कली-कली पर नूर।
बहकी बहकी फिर रही, हवा नशे में चूर।

झुक-झुक कर मिलने लगे,बेला और गुलाब।
सेमल,चंपा पे चढ़ा ,पूरा आज शबाब।

यौवन भँवरों पर चढ़ा, बहकी इनकी चाल।
छुप-छुप कर ये बैठते,जा कलियों की डाल।

बौराया सा आ गया,फिर फागन का मास।
प्रीत पगी फिर से जगी,नयन मिलन की आस।

फूल, कली, मिल झूमते, रचते दोनों रास।
बासंती परिधान में, आया फागुन मास।

ठकुराइन सी आ गई, हवा बजाती द्वार।
जो-जो पड़ता सामने, सबको पड़ती मार।

हवा लरजती आ गई, जब पेड़ों के पास।
बतियाये फिर देर तक, दोनों कर-कर हास।

सज-धज कर गौरी खड़ी,खोले मन के द्वार।
प्रीत रंग में डूबकर, सुंदर लगती नार।

साँसों-साँसों घुल रही, रेशम रेशम धार।
बाट पिया की जोहती, रंग भरी पिचकार।

(2)

हवा मिस- झुक-लुक-लुक-छुप,
डार-डार से करे अंखियां चार।

कस्तूरी हुई गुलाब की साँसें,
केवड़ा,पलाश करे श्रृंगार।

छूते ही गिर जाये पात लजीले,
इठलाती-मदमाती सी बयार।

सुन केकि-पिक की कुहूक-हूक,
बौरे रसाल घिर आये कचनार।

अम्बर पट से छाये पयोधर,
सुमनों पर मधुकर गुंजार।

कुंजर,कुरंग,मराल मस्ती में,
मनोहर,मनभावन संसार।

यमुना- तीरे माधव बंशी,
फिर राधे-राधे करे पुकार।

नख-शिख सज चली राधे-रमणी,
भर मन-अनुराग अपरम्पार।

संस्कृति पर्व
Sanskriti Parva

(भारत संस्कृति न्यास का प्रकल्प)

सदस्यता फॉर्म - SUBSCRIPTION FORM

नाम
NAME _____

पिता/पति
FATHER/HUSBAND _____

पत्रिका के लिए स्थाई डाक का पता
PERMANENT POSTAL ADDRESS FOR MAGAZINE _____

_____

_____

पिन कोड
PIN CODE _____

कन्ट्री कोड
COUNTRY CODE _____

ई-मेल
MAIL ID _____

मोबाइल नं०
MOBILE NO. _____

सदस्यता का प्रकार एवं शुल्क / TYPES OF MEMBERSHIP & FEE

	भारत में /IN INDIA	अप्रवासियों के लिए/FOR NRIs
वार्षिक/ANNUAL	1000/-	$100
त्रैवार्षिक/THREE YEARS	2500/-	$250
पंच वार्षिक/FIVE YEARS	5000/-	$400
आजीवन व्यक्ति/LIFETIME PERSON	11000/-	$750
आजीवन संस्था/LIFETIME INSTITUTION	21000/-	$1000

शुल्क का भुगतान नगद, ड्राफ्ट या चेक से किया जा सकता है। ऑनलाइन भुगतान पत्रिका के खाते में किया जा सकता है। चेक या ड्राफ्ट 'संस्कृतिपर्व प्रकाशन' के नाम होना चाहिए।

Account Detail

NAME : SANSKRITIPARVA PRAKASHAN,
BANK : HDFC, PRANAY TOWERS, LUCKNOW.
A/c NO. : 50200035311373 , IFSC : HDFC0000594, MICR : 226240002, BRANCH CODE: 000594

पंजीकृत कार्यालय : बी-64, आवास विकास कालोनी, सूरजकुंड, गोरखपुर-273001
लखनऊ कार्यालय : 2/43, विजय खण्ड, गोमती नगर, लखनऊ-226010
दिल्ली कार्यालय : बी-38 डिफेन्स कॉलोनी, नई दिल्ली-110024
सम्पर्क : + 91 94508 87186-87
यू.एस कार्यालयः 17413 Blackhawk St. Granada Hills, CA 91344 USA, Cell: 1-818-815-9826

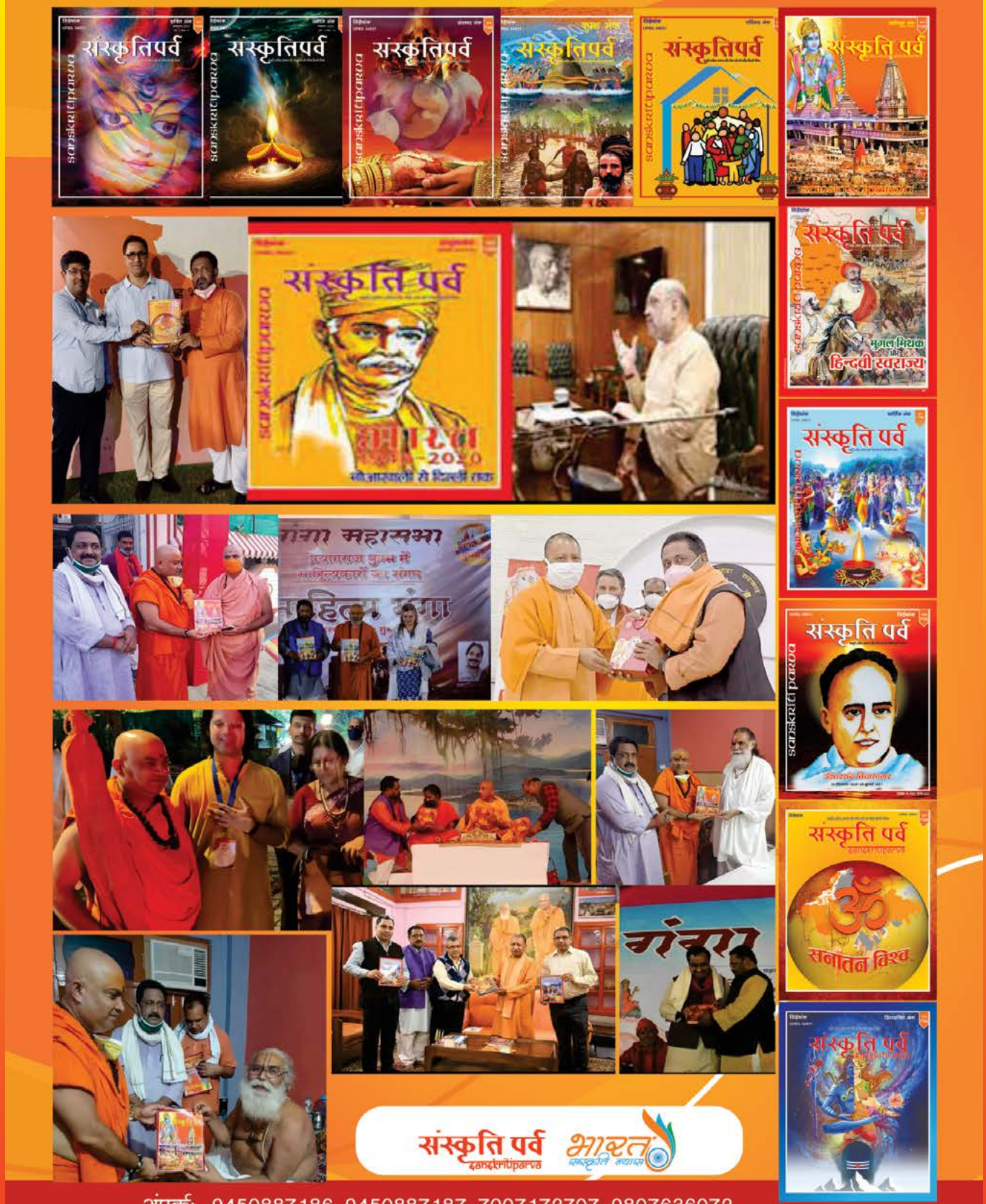

संपर्कः- 9450887186, 9450887187, 7007172707, 9807636072
email- editor.sanskritiparva@gmail.com

स्व0 चौधरी राम गोपाल सिंह यादव जी

(पूर्व सांसद/राष्ट्रीय अध्यक्ष अखिल भारतवर्षीय यादव महासभा)

चौ0 राम गोपाल सिंह
लॉ कालेज

(सी.एस.जे.एम. विश्वविद्यालय से संबद्ध एवं बार काउंसिल ऑफ इंडिया, नई दिल्ली द्वारा मान्यता प्राप्त)

एलएलबी • बीए-एलएलबी

(संस्थापक)
चौ. सुखराम सिंह यादव
पूर्व सभापति विधान परिषद/सांसद
राष्ट्रीय उपाध्यक्ष अखिल भारतवर्षीय यादव महासभा

CH. RAM GOPAL SINGH LAW COLLEGE

(चेयरमैन)
चौ.मोहित यादव
अध्यक्ष
चौ. हरमोहन सिंह जनकल्याण समिति

मोहनपुरम, मेहरबान सिंह का पुरवा, कानपुर नगर

Ph: +91 9616161640